226.9
शुक्ल।रा।स

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

चण्डी कार्यालय
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
इलाहाबाद २११००६

·9
|र|स

सचित्र

मुद्रायँ एवम् उपचार

मानद सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

सम्पादक

ऋतशील शर्मा, एम० ए०

तृतोय संस्करण :: भाद्रपद पूर्णिमा २०४० वि० :: सितम्बर ८३

प्रकाशक

पं॰ देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

मूल्य १०-०० रु०

अनुक्रमणिका

चित्र-सूची (पाँच)

विविध देव-मुद्राओं की तालिका (छः)

प्राक्कथन (सात)

१ मुद्रा-माहात्म्य १

२ मुद्राओं की वैज्ञानिकता २

३ संज्ञाध्याय–मुद्रा और उनके साधन ४

४ नित्य-पूजा की मुद्रायें ४-७

प्रार्थना ४

अंकुश, कुन्त, काम, तत्व, सम्मुखी आदि २४ मुद्रायें, सुरभि आदि ८ मुद्रायें, वासुदेव, जप, अङ्गन्यास की ६ मुद्रायें, अस्त्र, कर-न्यास की ६ मुद्रायें ५

बीज, लेलिहा, त्रिखण्डा, नाद, विन्दु, सौभाग्य-दण्डिनी, मातृका-न्यास की १५ मुद्राएँ, आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापिनी, सन्निरोधिनी, सम्मुखीकरणी, अवगुण्ठनी ६

धेनु (अमृतीकरण), सकलीकरण, परमीकरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ग्रास, प्राणाहुति, अपानाहुति, व्यानाहुति, उदानाहुति, समानाहुति ७

५ पञ्च-देवों की मुद्रायें ८-१०

शङ्ख, घण्टा, चक्र, गदा, पद्म, वंशी, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विल्व ८

गरुड़, नारसिंही, वराह, हयग्रीव, धनुष, वाण, परशु, जगन्मोहन, काम, मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, अक्ष, वर ९

अभय, मृग, खट्वाङ्ग, कपाल, डमरु, दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, परशु, मोदक, बीजपूर, पद्म, शक्ति की १० मुद्राएं, खड्ग, चर्म (ढाल), मूशल, दुर्ग १०

६ त्रि-शक्ति आदि देवियों की मुद्रायें ११-१२

महा-योनि, मुण्ड, भूतिनी, पङ्कजा (लक्ष्मी), अक्ष-माला, वीणा, व्याख्यान, पुस्तक, योनि, भूतिनी, बीज, धूमिनी, लेलिहा ११

सर्व-संक्षोभिणी, सर्व-विद्राविणी, सर्वाकर्षणी, सर्व-वश्य-करी, उन्मादिनी, महांकुशा, खेचरी १२

१२-१३

७ ध्यानावेश—प्रार्थना में १२

विघ्नघ्नी, विस्मय, प्रार्थना, अर्घ्य १३

सूर्य-प्रदर्शनी १३

८ योग-साधना में

मुकुल, पङ्कज, व्याक्रोशी, निष्ठुर, योग, महामुद्रा, उड्डीयान, महा-खग, १३

जालन्धर, मूल-बन्ध, महा-वेध, विपरीत-करणी, वज्रोली, माण्डूकी, शाम्भवी १४

९ पञ्च-तत्व की मुद्रायें

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गिनी, १४

भुजङ्गिनी, रिपु-जिह्वा-ग्रहा, गालिनी, सर्व-संक्षोभ-कारिणी, तर्जनी, क्रोध १५

१० शान्ति-रक्षण

अशनि (कुशलि), स्फोट (छेटिका), शुभङ्करी, मुष्टी, शक्ति, पञ्चमुखी, १५

प्रार्थना, संहार, बलिदान की चार मुद्राएँ १५-१६

११ होम की मुद्रायें

अवगुण्ठिनी, सप्तजिह्वा, प्रज्वालिनी, मृगी, हंसी, शूकरी, काम्य मुद्राएं, १६

आवशिष्टिका मुद्रा १७-२८

१२ तान्त्रिक पूजोपचार १७

१ उपचार-तालिका २१

२ उपचार-विवरण २७

३ उपचार-रहस्य ३०

१३ अकारादि-क्रम से मुद्रा-सूची ३१

१४ अवशिष्ट मुद्राएँ

चित्र-सूची

पृष्ठ १

प्रार्थना । अंकुश (१) । अंकुश (२) । कुन्त । कुम्भ । तत्व । प्राण । अपान । व्यान ।

पृष्ठ २

उदान । समान । ग्रास । आवाहनी । स्थापनी । सन्निधापिनी । सन्निरोधिनी । सम्मुखीकरणी । अवगुण्ठनी ।

पृष्ठ ३

शङ्ख । चक्र । गदा । पद्म । ज्ञान । परशु । मत्स्य । कूर्म (कच्छप) । हयग्रीव ।

पृष्ठ ४

वर । अभय । दन्त । पाश । मोदक । खड्ग । मूशल । मुण्ड । लेलिहा ।

पृष्ठ ५

सुमुखी । सम्पुटी । वितत । विस्तृत । द्विमुखी । त्रिमुखी । चतुर्मुखी । पञ्चमुखी । षण्मुखी ।

पृष्ठ ६

अधोमुखी । व्यापकाञ्जलि । शकट । यम-पाश । ग्रन्थित । सम्मुखोन्मुख । प्रलम्ब । मुष्टिक । वराह ।

पृष्ठ ७

सिंहाक्रान्त । महाक्रान्त । मुद्गर । पल्लव । धेनु । बीज । त्रिखण्डा । सप्त-जिह्वा । मृगी ।

पृष्ठ ८

सर्व-संक्षोभिणी । सर्व-विद्राविणी । सर्वाकर्षिणी । सर्व-वशङ्करी । सर्वोन्मादिनी । सर्व-महांकुशा । खेचरी । योनि । संहार (विसर्जन) ।

विविध देव-मुद्राओं की तालिका

विविध देवताओं की प्रमुख मुद्राओं की तालिका यहाँ दो जा रही है। इन मुदाओं का प्रकार पुस्तक में यथा-स्थान दिया गया है। अतः वांछित मुद्रा का विवरण सहज हो जाना सकता है।

विष्णु—शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विल्व, गरुड़, नृसिंह, वराह, हयग्रीव, धनुष, वाण, परशु, जगन्मोहिन, काम।

शिव—लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, अक्ष, वर, अभय, मृग, खट्वाङ्ग, कपाल, डमरु।

गणेश—दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, परशु, मोदक, वीजपूर।

सूर्य—पद्म।

शक्ति—पाश, अंकुश, वर, अभय, धनुष, वाण, खड्ग, चर्म, मूशल, दुर्ग।

महा-काली—महायोनि, मुण्ड, भूतिनी।

महा-लक्ष्मी—लक्ष्मी, चक्र।

महा-सरस्वती—अक्ष-माला, वीणा, व्याख्या, पुस्तक।

तारा—योनि, भूतिनी, बीज, धूमिनी, लेलिहा।

त्रिपुरसुन्दरी—सर्व-संक्षोभिणी, सर्व-विद्राविणी, सर्वाकर्षणी, सर्व-वश्यकरी, सर्वोन्मादिनी, महांकुशा, खेचरी, बीज, योनि।

भुवनेशी—पाश, अंकुश, वर, अभय, पुस्तक, ज्ञान, बीज, योनि।

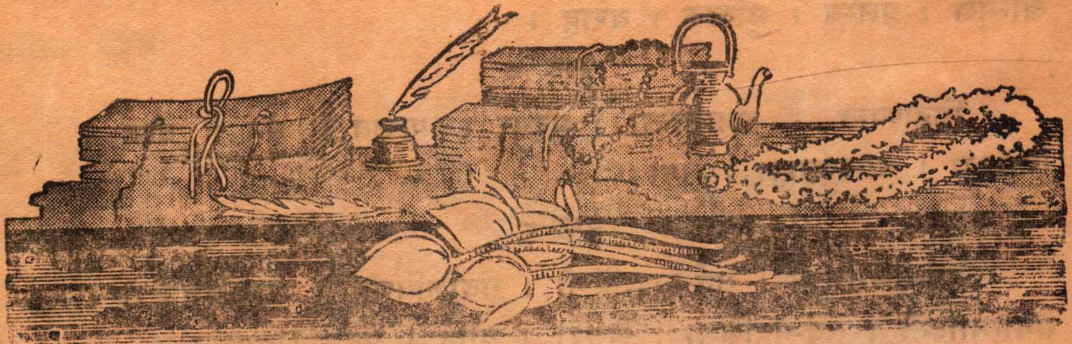

प्रार्थना मुद्रा
अंकुश मुद्रा (१)
अंकुश मुद्रा (२)
कुन्त मुद्रा
कुम्भ मुद्रा
तत्त्व मुद्रा
प्राण मुद्रा
अपान मुद्रा
व्यान मुद्रा

उदान मुद्रा
समान मुद्रा
ग्रास मुद्रा
आवाहनी मुद्रा
संस्थापनी मुद्रा
सन्निधापनी मुद्रा
सन्निरोधिनी मुद्रा
सम्मुखीकरणी मुद्रा
अवगुण्ठनी मुद्रा

शङ्ख मुद्रा

चक्र मुद्रा

गदा मुद्रा

पद्म मुद्रा

ज्ञान मुद्रा

परशु मुद्रा

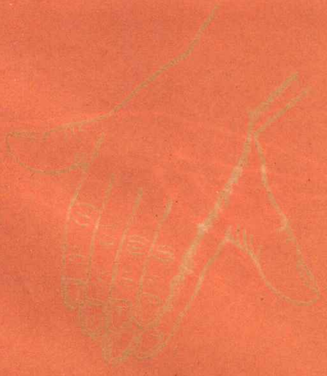

मत्स्य मुद्रा

कूर्म (कच्छप) मुद्रा

हयग्रीव मुद्रा

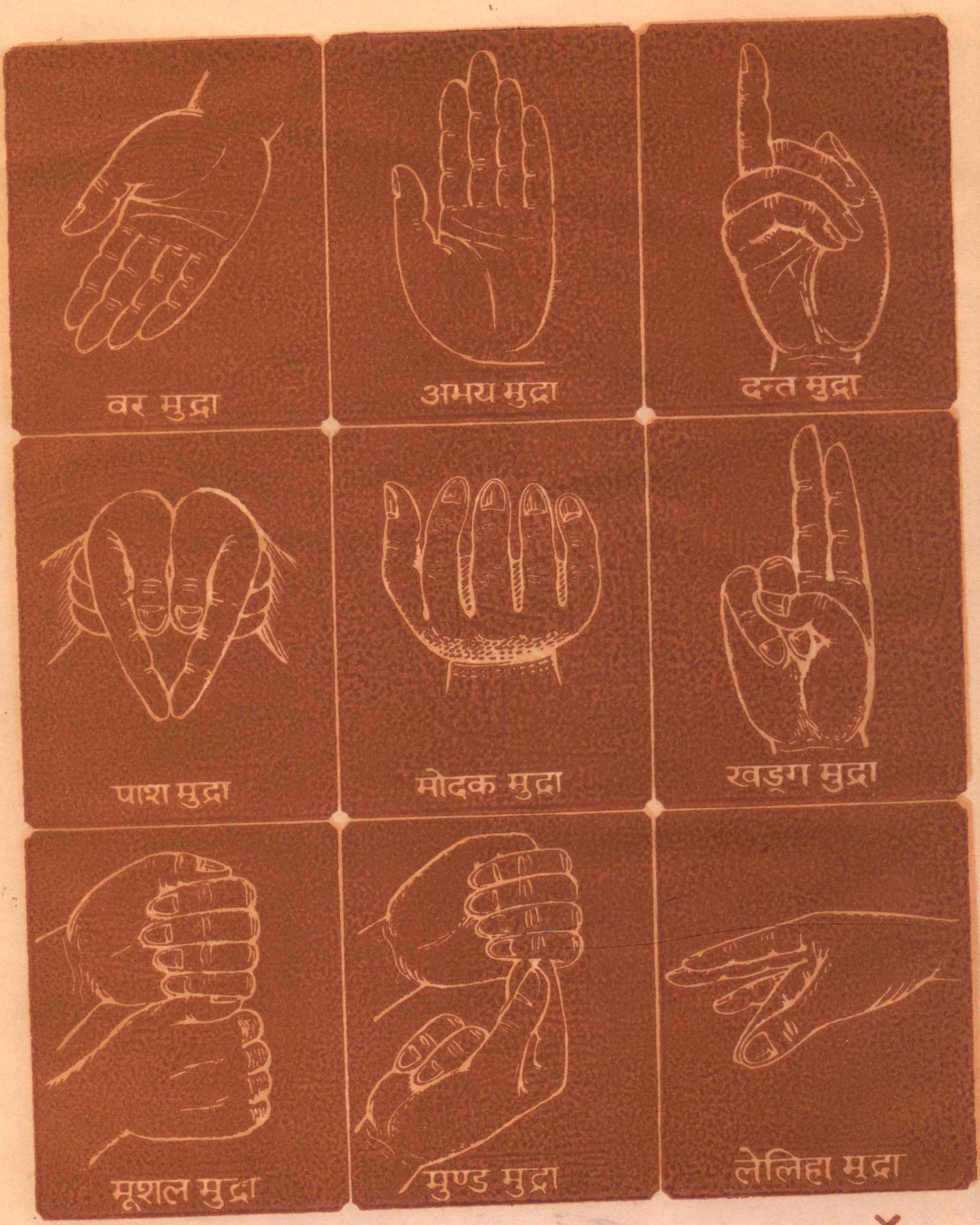
वर मुद्रा
अभय मुद्रा
दन्त मुद्रा
पाश मुद्रा
मोदक मुद्रा
खड्ग मुद्रा
मूशल मुद्रा
मुण्ड मुद्रा
लेलिहा मुद्रा

सुमुखी मुद्रा

सम्पुटी मुद्रा

वितत मुद्रा

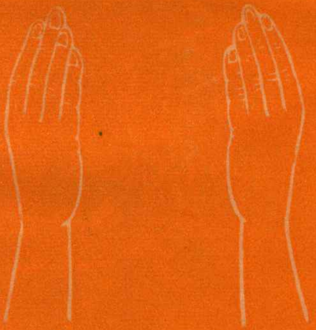

विस्तृत मुद्रा

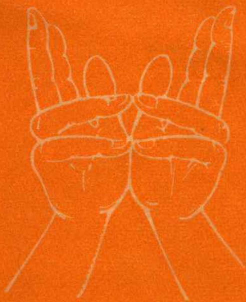

द्विमुखी मुद्रा

त्रिमुखी मुद्रा

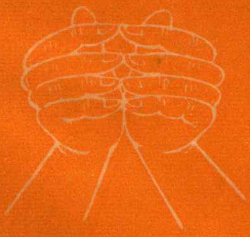

चतुर्मुखी मुद्रा

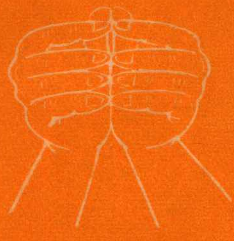

पञ्चमुखी मुद्रा

षणमुखी मुद्रा

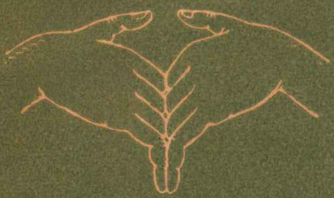

अधोमुखी मुद्रा

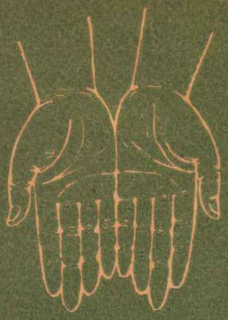

व्यापकाञ्जलि मुद्रा

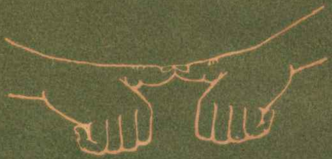

शकट मुद्रा

यम-पाश मुद्रा

ग्रन्थित मुद्रा

सम्मुखोन्मुख मुद्रा

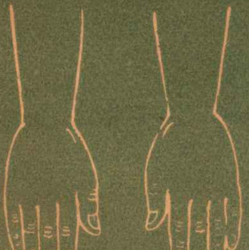

प्रलम्ब मुद्रा

मुष्टिक मुद्रा

वराह मुद्रा

सिंहाक्रान्त मुद्रा

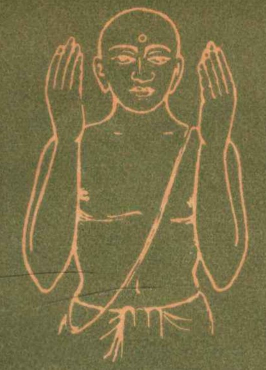

महाक्रान्त मुद्रा

मुद्गर मुद्रा

पल्लव मुद्रा

धेनु मुद्रा

बीज मुद्रा

त्रिखण्डा मुद्रा

ज्वालिनी (सप्त-जिह्वा) मुद्रा

मृगी मुद्रा

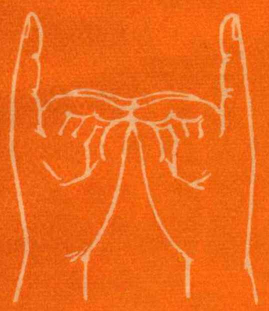

सर्व-संक्षोभिणी मुद्रा

सर्व-विद्राविणी मुद्रा

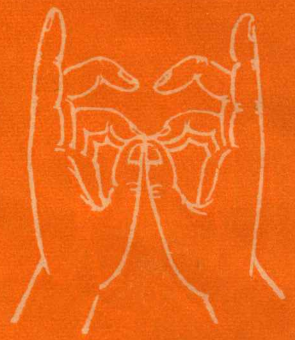

सर्वाकर्षिणी मुद्रा

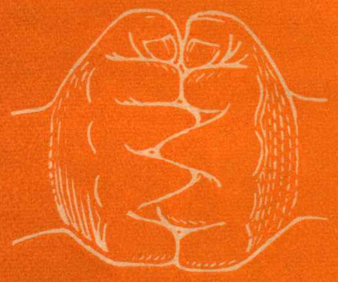

सर्व-वशंङ्करी मुद्रा

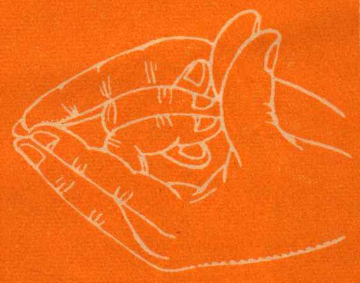

सर्वोन्मादिनी मुद्रा

सर्व-महाङ्कुशा मुद्रा

खेचरी मुद्रा

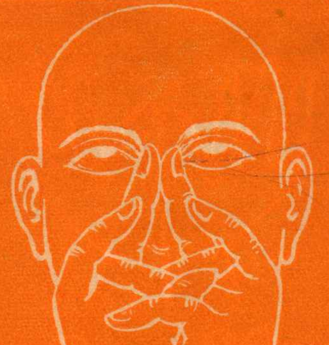

योनि मुद्रा

संहार मुद्रा

प्राक्कथन

साधना में 'मुद्राओं' और 'उपचारों' का अपना विशेष स्थान है । इन दोनों के सम्बन्ध में प्रायः लोग उतना नहीं जानते । इसी को ध्यान में रखकर यहाँ मुद्राओं के सम्बन्ध में सचित्र प्रकाश डाला गया है और उत्तरार्द्ध में उपचारों का वर्णन किया गया है ।

'मुद्रा' का महत्व तो शाक्त-धर्मावलम्बी भले प्रकार समझते हैं, क्योंकि शाक्त-साधना के प्रसिद्ध पञ्च-मकारों में एक मकार 'मुद्रा'-वाचक ही है, परन्तु वहाँ 'मुद्रा' का तात्पर्य अन्न से बने खाद्य पदार्थों से है । यहाँ जिस मुद्रा का वर्णन हुआ है, वह हाथ, अँगुली और मूठो के संयोग से उत्पन्न होनेवाली एक भाव-पूर्ण क्रिया है, जो देवता के प्रीत्यर्थ की जाती है । इस क्रियात्मक पूजन-मुद्रा का उपयोग देवता की पूजा में शाक्त-साधक विशेषतया करते हैं । अन्य साधकों के लिए भी इनका महत्व कम नहीं है क्योंकि मुद्रा-प्रदर्शन देवार्चा-विधान काएक आवश्यक अङ्ग है ।

शास्त्रों में लिखा है कि आसन, मुद्रा और प्राणायाम गुरु-गम्य विद्यायें हैं । इस कथन का आशय यह है कि मुद्राओं को किसी अनुभवी साधक से सीखकर ही प्रयोग में लाना चाहिये । तभी सुफल मिलता है, अन्यथा अनिष्ट हो सकता है ।

'उपचार' की आवश्यकता सभी सम्प्रदाय के भक्त-जन अनुभव ही नहीं करते हैं अपितु गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल जैसी पूजोपयोगी सामग्रियों को तो सामान्यतः वे प्रतिदिन प्रयोग में लाया ही करते हैं ।

किन्तु क्या केवल ये ही ५-६ सामग्रियाँ पूजोपचार में मानी गई हैं या कुछ और भी वस्तुयें हैं ? इनका संग्रह किस प्रकार और किस रूप में करना चाहिये और ये सब सामग्रियाँ न मिलें, तो इनमें कमी की जा सकती है या नहीं ? इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर बहुतेरे लोग नहीं जानते । अतएव इस विषय का विवरण सुलभ होना कितना उपयोगी होगा, यह सभी समझ सकते हैं ।

'मुद्रा' और 'उपचार' के महत्व को यहाँ दर्शाया गया है । प्रस्तुत साहित्य को ध्यान से पढ़ जाने पर पाठक स्वयं समझ जायेंगे कि देवता की पूजा विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिये इन दोनों का ज्ञान प्राप्त करना कितना आवश्यक है । हमें आशा है कि यह ज्ञान प्राप्त कर लेने पर पाठक अपने गुरुदेव से इनके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रशिक्षण ग्रहण करने को सचेष्ट होंगे और इन्हें हृदयङ्गम कर सविधि पूजन के द्वारा देवता की प्रीति अर्जित करने में सफल मनोरथ होंगे । श्री जगदम्बा से प्रार्थना है कि ऐसा ही हो ।

अन्त में हम ब्रह्मीभूत गुप्तावतार बाबा श्री, 'कौल-कल्पतरु' स्व० शुक्ल जी, स्व० श्यामा नन्द नाथ, स्व० धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा एवं स्व० हनुमान जी शर्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं, जिनकी अनूठी 'कृतियों' के ही सहारे यह साहित्य प्रस्तुत हो सका है ।

प्रयाग | **विनीत**

भाद्रपद पूर्णिमा २०४० वि० | **—'कुल-भूषण'**

मुद्रा-माहात्म्य

विश्व में प्रचलित प्रायः सभी धर्मों में 'मुद्रा' का अपना विशेष स्थान रहा है किन्तु भारतीय सनातन धर्म के अन्तर्गत आगम शास्त्र अर्थात् तन्त्रों में मुद्राओं का विवरण जितने वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित ढंग से विस्तार के साथ मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। 'मुद्रा' शब्द के अनेक अर्थ हैं किन्तु धर्म के कर्म-काण्ड के सन्दर्भ में देव-पूजा करते समय हाथ की अँगुलियों द्वारा जो सार्थक प्रदर्शन किया जाता है, उससे प्रकट होनेवाली विशेष आकृतियों को भी 'मुद्रा' नाम से जाना जाता है। यहाँ उसी 'मुद्रा' की महिमा को स्पष्ट करनेवाले कुछ शास्त्रीय वचनों को उद्धृत किया जा रहा है—

१ कुलार्णव तन्त्र (१७।५७); योगिनी हृदय (१।५७)—मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।

२ शारदातिलक तन्त्र (२३।१०६)—मुद्राः प्रवक्ष्यामि याभिः मादन्ते सर्व-देवताः।

३ मेरु-तन्त्र—मुद्राभिरेव तृप्यन्ति न पुष्पादिक-पूजनैः। महा-पूजा कृता तेन येन मुद्राष्टकं कृतं।

४ ज्ञानार्णव तन्त्र (४।३६)—वरदाभय-मुद्रे च वरदाभय-वत् प्रिये!

५ फेत्कारिणी तन्त्र (३।१८३)—षण्मुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्म-पाश-गदाह्वयाः। मुसलाशनि-खड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु।

६ यामल तन्त्र—मोदनात् सर्व-देवानां द्रावणात् पाप-सन्ततेः। तस्मान्मुद्रेयमाख्याता सर्व-कामार्थ-साधिनी। मुदं रातीति मुद्रा स्यात् येनैका मुष्टिरेव तु। स्वल्प-भेदात् कोप-हर्षौ प्राणिनां जनयत्यतः। तेनैव सर्व-देवानां मुद्रा हर्ष-प्रदा मता।

७ कङ्काल-मालिनी तन्त्र (द्वितीय पटल)—योनि-मुद्रा महेशानि! साक्षान्मोक्ष-प्रसाधिनी।

८ कालिका-पुराण (७०।३३)—मुद्रा विना तु यज्जाप्यं प्राणायामः सुरार्चनं। योगो ध्यानासनं चापि निष्फलानि तु भैरव!

९ मन्त्र-दर्पण—नादीक्षितस्तु रचयेत् क्षुभ्यन्ति हि देवताः यस्मात्। मुद्राः भवन्ति विफलाः, सोऽपि च रोगी दरिद्रः स्यात्।

१० पूजा-प्रकाश, पृष्ठ १२३—मुद्राः देवता-सन्निधापकाः।

११ विष्णु-संहिता (७।४३)—मुदं कुर्वन्ति देवानां राक्षसान् द्रावयन्ति च।

१२ घेरण्ड-संहिता (पृष्ठ ३६)—पञ्च-विंशति-मुद्राः वै सिद्धिदाश्चेह योगिनां।...मुद्राणां दशकं ह्येतत् व्याधि-मृत्यु-विनाशकं। देवेशि! कथितं दिव्यमष्टैश्वर्य-प्रदायकं।

१३ आर्य-मञ्जु-श्रीमूल-कल्प, पृं० ३६६—निर्विषोऽपि भवेत् क्षिप्रं यो जन्तुर्विष-मूर्छितः। चत्वारिंशति समाख्याता मुद्रा श्रेष्ठा महार्घिका।

१४ कादम्बरी, उत्तर-भाग—मुद्रा-बन्धाद् विष-प्रसुप्तस्योत्थाने कोदृशी युक्तिः।

१५ राघव भट्ट—मुदं राति ददातीति मुद्रा। अतएव तद्-दर्शनेन देवता-हर्षोत्पत्तिः। स्वांगुल्यो हि पञ्च-भूतात्मिका अंगुष्ठाद्या आकाश-वाय्वग्नि-सलिल-भू-रूपास्तासां मिथः संयोग-रूप-संकेतात् कोऽपि देवता-प्रगुणी-भाव-पूर्वको मोदः-सानिध्य-करो भवति।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'मुद्रा'-प्रदर्शन से देवता प्रसन्न होते हैं, 'मुद्रा' दिखानेवाले भक्त साधक पर द्रवित होकर दया करते हैं। राक्षस भी 'मुद्रा' के प्रभाव से अनुकूल हो जाते हैं। 'मुद्रा' दिखाकर उपासक देवता के समीप पहुँच जाता है। मुद्राओं के देखने से देवता पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होते हैं। 'मुद्रा'-प्रदर्शन से पूजा 'महा-पूजा' के स्तर को प्राप्त कर लेती है।

मुद्राओं के बिना जो भी जप, प्राणायाम, देवार्चन, योग, ध्यान, आसनादि किया जाता है, वह सब निष्फल होता है।

अंगुष्ठ आदि पाँचों अँगुलियाँ क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, सलिल और भू-तत्त्वात्मक हैं। अतः उनके संयोग से होनेवाले सङ्केतों—मुद्राओं द्वारा उन-उन तत्वों के मिश्रण के प्रभाव से देवता को हर्ष होता है और वह अपनी कृपा प्रदान करता है।

'मुद्रा'-प्रदर्शन से विषादि द्वारा मूर्छित व्यक्ति भी स्वस्थ होता है। व्याधि और मृत्यु तक का निवारण मुद्राओं द्वारा हो जाता है। यही नहीं, मानव जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' तक पहुँचने में 'मुद्रा' सहायभूत होती है।

[२]

मुद्राओं की वैज्ञानिकता

यहाँ 'मुद्राओं' की वैज्ञानिकता का वर्णन करना उचित होगा। उससे इनकी महिमा और भी पुष्ट होती है। इस सम्बन्ध में नेपाल के स्वर्गीय ले० जनरल धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा विशेषतया उल्लेखनीय हैं। ६० वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर इसी वर्ष सम्वत् २०४० में काठमाण्डू (नेपाल) में आपका मणिपुरवास हुआ है। शाक्तधर्म की प्रसिद्ध क्रमदीक्षापूर्वक साम्राज्याभिषेक तक के संस्कार प्राप्त करनेवाले आप विशिष्ट साधक थे। आपने तान्त्रिक उपासना के रहस्यपूर्ण विषयों का उद्घाटन करनेवाली विस्तृत लेखमालाएँ धारावाहिक रूप में लिखीं, जो 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाशित हुई और आपकी ख्याति दिग्-दिगन्त में फैल गई। गुप्तावतार बाबा श्री द्वारा आपको सं० २००२ के आश्विन नवरात्र में 'विश्वविजयी कुल-शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत किया गया। ऐसे ही विज्ञ महा-पुरुष श्रीमान् राणाजी की एक कृति नेपाली भाषा में 'निगमागम-वैज्ञानिक-सार' है। उसके तृतीय पटल के पृष्ठ १४७ से १५७ तक में मुद्राओं का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया गया है, जिसका सारांश निम्न प्रकार है—

"…बाह्य-पूजन में 'जल' का प्रयोग आवश्यक होता है, यह सभी जानते हैं। इस 'जल' के शोधन के लिये तीन मुद्रायें निर्दिष्ट हैं—१ मत्स्य-मुद्रा, २ धेनु-मुद्रा और ३ अंकुश-मुद्रा। इनमें से प्रत्येक का वैज्ञानिक विवेचन इस प्रकार है—

१ मत्स्य-मुद्रा—इसमें शिव-रूप दाएँ हाथ को शक्ति-रूप बायें हाथ के ऊपर रखा जाता है। बायें हाथ की चार अँगुलियों के बीच जो छिद्र हैं, उन्हें योनि-रूप मानकर उनमें संलग्न करते हैं। फिर आकाश-तत्वात्मक अँगूठों को हिलाते हैं, जिससे पञ्च-लिङ्ग-तत्व का उत्पादन होकर दाहिने हाथ की हथेली से होकर बाँयें हाथ की हथेली से विशेष प्रकार की विद्युत्-प्रभा निकलने लगती है। इस समय मन में जिस तत्वात्मक मन्त्र का चिन्तन होगा, उसी की प्रतिक्रिया अनुभव में आएगी। यथा—वायु-तत्वात्मक बीज 'यं' का दस बार जप करते हुये उक्त 'मत्स्य-मुद्रा' को दिखाने से पात्रस्थ जल के दोषों का शोषण होगा अर्थात् जो भी दोष उसमें होंगे, वे सूख जायेंगे। फिर अग्नि-तत्वात्मक 'रं' बीज का जप करते हुए 'मत्स्य-मुद्रा' का प्रदर्शन करने से उक्त सूखे हुये दोष जलकर भस्म हो जायँगे।

इसके बाद निर्दोष हुये 'जल' को अमृत-रूप बनाने के लिए उसे 'धेनु-मुद्रा' दिखाते हैं। यथा—

२ धेनु-तत्व—पृथिव्यात्मक दो कनिष्ठाओं को, जल-तत्वात्मक दो अनामिकाओं से परस्पर मिलाकर फिर अग्नि (तेज) तत्वात्मक दो मध्यमाओं को वायु-तत्वात्मक दो तर्जनियों से मिलाकर आकाशात्मक दोनों अंगुष्ठों को अलग रखने से 'धेनु-मुद्रा' बनती है। इस प्रकार पृथ्वी-तत्व और जल-तत्व के संयोग से उत्पादन शक्ति, अग्नि-तत्व और वायु-तत्व के संयोग से पाचन-शक्ति तथा इन दोनों शक्तियों के जुड़ने से सुधांशु-तत्व उत्पन्न होता है। दो-दो अँगुलियों के जोड़ने से योन्याकार चार मुद्रायें बनती हैं अर्थात् चार योनि-स्वरूप प्रत्यक्ष होते हैं। फिर जल-तत्वात्मक बीज 'वं' का १० बार जप करते हुये उक्त धेनु-मुद्रा के प्रदर्शन से सुधांशु-तत्व के प्रवाह से पात्रस्थ जल अमृतमय हो जाता है।

तदनन्तर जल में तीर्थों के आवाहन के लिए 'अंकुश-मुद्रा' का प्रयोग करते हैं। यथा—

३ अंकुश-मुद्रा—पृथ्वी-तत्वात्मक कनिष्ठा, जल-तत्वात्मक अनामिका और अग्नि-तत्वात्मक मध्यमा को आकाश-तत्वात्मक अँगूठे से संयुक्त कर वायु-तत्वात्मक तर्जनी के अलग खड़ी करने से लिङ्गाकार अंकुश-मुद्रा बनती है। इससे आकर्षण-शक्ति उत्पन्न होती है। इस मुद्रा को ऊपर से नीचे झटके से दिखाने से सूर्य की किरणों से सभी तीर्थों का गुण-रूप तैर्थीय (पवित्र करनेवाला) तत्व निकल कर पात्रस्थ जल में आ जाता है और इस प्रकार वह जल तीर्थ-जल के समान परम पवित्र हो जाता है।…"

अनुभव-सिद्ध स्व० राणा जी महोदय की उक्त व्याख्या के आधार पर अन्य मुद्राओं के प्रभाव का भी वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हृदयङ्गम किया जा सकता है। इस प्रकार साधना में परम्परा से प्रयुक्त की जानेवाली मुद्राओं की विज्ञान-सम्मत महिमा स्पष्ट हो जाती है।

[३]

संज्ञाध्याय—मुद्रा और उनके साधन

'मुद्रा' उनको कहते हैं, जिनके करने से देवता आनन्दित हों—पापों के पुञ्ज पिघल जायँ (पाप में प्रवृत्ति न हो) और देवताओं का सान्निध्य मिले।

'मुद्रा' द्वारा साधक भौतिक संसार से ऊपर उठकर अनन्त की भावना करने में समर्थ होता है। इस प्रकार 'मुद्रा' आध्यात्मिक उन्नति का एक सशक्त माध्यम है।

हाथ की अँगुलियों और मूठियों के जोड़ने-मोड़ने और खोलने से सम्पूर्ण मुद्रायें बनती हैं। अतएव हाथ, अँगुली और मूठी (मुष्टि) के भेद और नाम ज्ञातव्य हैं।

'मणिबन्ध' या 'कलाई', जहाँ राखी या घड़ी बाँधते हैं, वहाँ से 'कनिष्ठा' तक का अङ्ग 'हाथ' कहलाता है। इसका अग्र-भाग 'पञ्च-शाख', 'शय' और 'पाणि' कहलाते हैं। इसमें जो अँगुलियाँ हैं, वे 'कर-पल्लव' या 'कर-शाख' हैं।

अँगुलियाँ ५ होती हैं। उनमें पहली को अँगुष्ठ (अँगूठा), ज्येष्ठा, वृद्धा और भ्रू-पूजक कहते हैं। दूसरी को तर्जनी, प्रदर्शिनी, प्रदेशिका और पितृ-पूजक कहते हैं। तीसरी को मध्या, मध्यमा, जप-करणी और बीचकी कहते हैं। चौथी को अनामा, अनामिका और प्रान्त-वासिनी कहते हैं और पाँचवीं को कनिष्ठा, अन्त्यगा, लध्वी, स्वल्पा, रत्नी और अन्त्यजा कहते हैं। इन सबको बन्द करने से 'मुष्टि' या 'मूठी' बनती है और खोल देने से 'कर-तल' हो जाता है। 'कर-तल' की पीठ को 'कर-पृष्ठ' कहते हैं।

'मूठी' के दो भेद हैं—१ जिसमें रत्नी (कनिष्ठा अँगुली) शामिल हो, वह मूठी 'रत्नी' और २ जिसमें रत्नी न हो, वह 'अरत्नी' होती है।

हाथ में तीर्थ और देवता भी प्रतिष्ठित हैं। यथा—हाथ के आरम्भ में अँगूठे के कुछ नीचे 'आत्म-तीर्थ', हाथ के अन्त में अँगुलियों के ऊपर होकर 'परमार्थ-तीर्थ', हाथ के उत्तर भाग में कनिष्ठा से कुछ नीचे 'देव-तीर्थ' और हाथ के दक्षिण भाग (तर्जनी और अँगूठे के बीच) में 'पितृ-तीर्थ' है। स्नान-दानादि के सङ्कल्प का जल तत्तत्-स्थानीय तीर्थ के ऊपर होकर छोड़ने से महा-फल होता है।

हाथ की अँगुलियों में पाँचों महा-भूत प्रतिष्ठित हैं। प्राण-तोषिणी तन्त्र के अर्थकाण्ड के प्रथम परिच्छेद में नील-तन्त्र का वचन उद्धृत है। उसके अनुसार—

१—कनिष्ठा में पृथिवी तत्त्व। २—अनामा में जल-तत्त्व। ३—मध्यमा में अग्नि तत्त्व। ४—तर्जनी में वायु तत्त्व। ५—अंगुष्ठ में आकाश तत्त्व।

[४]

नित्य-पूजा की मुद्रायें

१ प्रार्थना—दोनों हाथों की दशों अंगुलियाँ फैलाकर आमने-सामने परस्पर मिला दे और अपने हृदय के समीप रखे, तो प्रार्थना-मुद्रा सम्पन्न होती है।

२ अंकुश—दाहिने हाथ की मूठो बाँध कर तर्जनी को अंकुश के समान मोड़े, तो त्रैलोक्य का आकर्षण करनेवाली 'अंकुश'-मुद्रा होती है। बुलाने में भी तर्जनी से सङ्केत करते हैं।

३ कुन्त—दाहिने हाथ की मूठी खड़ी करके तर्जनी को सीधी करे और उसके अग्रभाग में अंगूठा लगावे, तो सर्व-रक्षा-कारी 'कुन्त' (भाला) मुद्रा होती है।

४ कुम्भ—दाहिने अंगूठे को बाँएँ में लगाकर शेष अंगुलियों को मूठी के समान करके नीचे, ऊपर लगा दे और मूठी को पोली रखे, तो स्नान के समय करने की 'कुम्भ'-मुद्रा हो जाती है। ऐसी ही कलश-मुद्रा आगे पूजन की मुद्राओं में दी है।

५ तत्व—अंगूठे और अनामिका के अग्र-भागों के मिलाने से 'तत्व'-मुद्रा होती है। सनातनो सज्जन स्नान के समय जलाशय में प्रविष्ट होकर अथवा घर में जल-पात्र सम्मुख रखकर उसमें 'तत्व'-मुद्रा का उपयोग करते और फिर नहाते हैं।

६-२९ सम्मुखी आदि २४ मुद्रायें—सम्मुखी, सम्पुटी, वितत, विस्तृत, द्विमुखी, त्रिमुखी, चतुर्मुखी, पञ्चमुखी, षण्मुखी, अधोमुखी, व्यापक, आञ्जलिक, शकट, यम-पाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, प्रलय, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, बराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त और मुद्गर—ये २४ मुद्रायें सन्ध्या के समय की जाती हैं। इनमें ७ मुद्राएँ तो परम्परागत अभ्यास से करते हैं और शेष ७ के मूल हैं।

३०-३७ सुरभी आदि ८ मुद्राएँ—सुरभो (धेनु), ज्ञान, वैराग्य, योनि, शङ्ख, पङ्कज (कमल), लिङ्ग और निर्वाण—ये आठ मुद्रायें संन्ध्या के अन्त में की जाती हैं।

३८ वासुदेव—दोनों हाथों की अञ्जली करने में अञ्जली-रूप 'वासुदेव'-मुद्रा होती है। ध्यान के समय इसका उपयोग करने से सर्व काम सिद्ध होते हैं।

३९ जप—अंगूठे और मध्यमा के मध्यम पर्वों (बीचवाले पोरों) से मणियाँ चला कर माला फेरने से 'जप'-मुद्रा सम्पन्न होती है।

४०-४५ अंग-न्यास की ६ मुद्रायें—तर्जनी, मध्यमा और अनामा से हृदय; मध्यमा और तर्जनी से शिर; अंगूठे से शिखा; दशों अंगुलियों से कवच अर्थात् दाहिने हाथ की ५ अँगुलियाँ बाईं भुजा पर और बायें की ५ अँगुलियाँ दाहिनी भुजा पर लगावे; तर्जनी, मध्यमा और अनामा से नेत्रों को स्पर्श करे और तर्जनी तथा मध्यमा से बाईं हथेली पर चोटकर 'अस्त्राय फट्'—कहे।

नेत्र प्रायः दो होते हैं और नित्य-कृत्यादि के न्यास में दोनों नेत्रों का स्पर्श किया जाता है, किन्तु किसी देवता के सान्निध्य में उसका अङ्ग-न्यास किया जाय, तो नेत्र-स्पर्श के स्थान में उसके जितने नेत्र हों, उतने का स्पर्श या ध्यान करना चाहिये—यथा शुक्र के एक; सूर्यादि के दो; शिव, शक्ति, गणेश और नृसिंहादि के तीन; ब्रह्मा के आठ; पञ्चमुखी रुद्र के दस और स्वामि-कार्तिक के बारह नेत्र हैं। अतः देव के तुल्य नेत्र-न्यास करना चाहिये।

४६ अस्त्र—दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा से बायें हाथ की हथेली में अभिघात करने (शब्द-युक्त चोट लगाने) से 'अस्त्र'-मुद्रा होती है।

४७-५२ कर-न्यास की ६ मुद्रायें—अँगूठे को अँगूठे से, तर्जनी को तर्जनी से, मध्यमा को मध्यमा से, अनामा को अनामिका से और कनिष्ठा को कनिष्ठा से लगाकर, कर को 'करतल' करने से कर-न्यास-मुद्रा सम्पन्न होती है। (कुछ लोग दोनों हाथों की अंगुलियाँ आपस में मिलाकर स्पर्श करने

के बदले बायें अँगूठे से बायें हाथ की अंगुलियों को और दाहिने अँगूठे से दाहने हाथ की अंगुलियों को स्पर्श करते हैं)।

५३-५८ जीवन्यास की ६ मुद्रायें—जीव-न्यास में बीज, लेलिहा, त्रिखण्डा, नाद, विन्दु और सौभाग्य-दण्डिनी---ये छः मुद्रायें की जाती हैं। इनके करने का विधान नीचे दिया जाता है---

दोनों हाथों को अर्ध-चन्द्र के आकार में बदल कर दोनों तर्जनियाँ और दोनों अंगूठे आपस में मिलावे। उनके नीचे मध्यमा में कनिष्ठा जोड़े और सबके नीचे अनामा लगावे, तो 'बीज'-मुद्रा बन जाती है। यह सम्पूर्ण सिद्धियों की बढ़ानेवाली है।

तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को बराबर अधोमुखी करके अँगूठे को अनामिका में जोड़ दे और सीधी करे, तो जीव-न्यास में करने की 'लेलिहा' मुद्रा होती है।

दोनों हाथों को उलट-पुलट कर मिलावे, अँगूठों को सीधा करे। दोनों तर्जनियाँ बाँकी (तिरछी) करके अनामिकाओं को पकड़े और कनिष्ठा से लगावे तो न्यास और ध्यान में सुख देनेवाली 'त्रिखण्डा'-मुद्रा होती है।

दाहने हाथ की मूठी ऊँची करके अँगूठा खड़ा करे, तो 'नाद' मुद्रा होती है।

तर्जनी तथा अँगूठे को मिलावे, तो 'विन्दु' मुद्रा बन जाती है।

बायें हाथ की मूठी बाँध कर तर्जनी सीधी करे और उसको कान के पास गोलाकार घुमावे, तो न्यास के समय करने की 'सौभाग्यदण्डिनी' मुद्रा होती है।

५९-७३ मातृका-न्यास की १५ मुद्रायें—मध्यमा और अनामा से भाल; अँगूठे और अनामा से नेत्र; हाथ की सम्पूर्ण संधियों से मस्तक और होठ; मध्यमा से पार्श्व; अँगूठे से कान; कनिष्ठा और अँगूठे से नासा-छिद्र; तर्जनी, मध्यमा और अनामा से मुख तथा कपोल; अनामा से दाँत और जीभ, कनिष्ठा और अनामा से पोठ; अँगूठा, मध्यमा, अनामा और कनिष्ठा से नाभि; इन चारों से जठर और कर के तलवे से अर्थात् हथेली से हृदय को स्पर्श करने से 'मातृका-मुद्रायें' होती हैं।

प्राय: कर-स्पर्श से न्यास करते हैं, किन्तु गौतम का मत है कि स्पर्श करने की अपेक्षा मन में ध्यान करे या पुष्पादि से स्पर्श करे अथवा अँगूठे और अनामा से अङ्गों को स्पर्श करके न्यास करे। ऐसा न करने से वह न्यास विफल हो जाता है।

७४-८२ देवोपासना की ९ मुद्रायें-देवोपासनादि में आवाहन, संस्थापन और संनिधापन आदि किये जाते हैं। उन सबकी मुद्रायें होती हैं। यथा---दोनों हाथों की अनामिकाओं के मूल में अँगूठा मिली हुई अञ्जली को दो बार ऊँची करके नीचे लाने से 'आवाहनी' और उसी अञ्जली को उलटी कर देने से 'स्थापनी' मुद्रा होती है।

दोनों हाथों की मूठी मिलाकर अँगूठा सीधा करने से 'सन्निधापनी' और दोनों हाथों की मूठियों में अँगूठा दबाने से 'सन्निरोधिनी' मुद्रा होती है।

दोनों मूठियां ऊँची करने से 'सम्मुखीकरणी' और बायें हाथ की तर्जनी को उलटी तथा दाहने हाथ की तर्जनी को सुलटी रखकर अधोमुख फिराने से 'अवगुण्ठनी' मुद्रा होती है। (उक्त दोनों अँगुलियों को मिलाकर अधोमुखी करे।)

दोनों हथेलियों को मिलाकर दाहिनी अनामा को बायीं कनिष्ठा से, बायीं अनामा को दाहिनी कनिष्ठा से, दाहिनी मध्यमा को बाँयीं तर्जनी से और बायीं मध्यमा को दाहिनी तर्जनी से आक्रान्त करे। अर्थात् उक्त अँगुलियों को उलटी-सुलटी-सीधी मिलाने से 'धेनु'-मुद्रा सम्पन्न होती है। इसी का दूसरा नाम 'अमृतीकरण' है। भगवान् को नैवेद्य अर्पण करने में भी यह बनाई जाती है। पूर्वोक्त प्रकार से न्यास करने से 'सकलीकरण' मुद्रा होती है। ये नौ मुद्रायें देवताओं के अर्चन (पूजन) में उपयुक्त होती हैं।

दोनों हाथ परस्पर संयुक्त करके त्रिकोण-रूप में करने से 'परमीकरण' हो जाती है। यह भी उक्त नौ मुद्राओं में ही शामिल है।

८३-९४ उपचार की १२ मुद्रायें---मध्यमा, अनामा और अँगूठा इन तीनों के सम्मिलित अग्रभाग से गन्धार्पण करने से 'गन्ध'-मुद्रा होती है। इसमें मूल-मन्त्र का उच्चारण भी करना चाहिये। (लोक-व्यवहार में अनामा से या अकेले अँगूठे से अथवा पहले अनामा से विन्दु और पीछे अँगूठे से तिलक करते हैं। यह मुद्रा मानव-पूजा में की जाती है)।

अँगूठे और तर्जनी से पुष्प (तुलसी-पत्रादि) ग्रहण करके चक्रादि को निवेदन करने से 'पुष्प' मुद्रा होती है।

मध्यमा और अनामा के मध्य पर्वों में धूप रखकर अँगूठे के अग्र-भाग से निवेदन करने से 'धूप' मुद्रा सम्पन्न होती है।

मध्यमा के मूल में अँगूठे का अग्र-भाग लगाकर 'दीपं दर्शयामि' कहने से 'दीप' मुद्रा होती है।

उत्तोलन (प्रसाद) को तीन जगह करके गायत्री अथवा मूल-मन्त्र (जिस देवता का जो मन्त्र हो, उससे) और तत्व-मुद्रा (जो पहले क्रमाङ्क ५ पर आई है, उससे) नैवेद्य-निवेदन करे, तो 'नैवेद्य' मुद्रा सम्पन्न होती है।

मूल-मन्त्र से आचमन देने से आचमन-मुद्रा और पूर्वोक्त तत्व-मुद्रा से 'ताम्बूल' मुद्रा होती है।

अँगूठे को अनामा और कनिष्ठा के अग्रभाग में लगाने से 'प्राण', तर्जनी और मध्यमा से अँगूठा लगाने से 'अपान', मध्यमा और अनामा से अँगूठा लगाने से 'व्यान', तर्जनी, मध्यमा और अनामा से अँगूठा लगाने से 'उदान' तथा तर्जनी, मध्यमा, अनामा तथा कनिष्ठा---इन चारों को एकत्र कर अँगूठा लगाने से 'समान' मुद्रा होती है।

पाँचों अँगुलियों के कुछ बाँकी (मुड़ी हुई) और मिली हुई होने से 'ग्रास' मुद्रा होती है (यह और पहले की तथा आगे आनेवाली 'ग्रास' मुद्रा दाहिने हाथ से होती है)।

९५-९९ भोजन की ५ मुद्रायें—कनिष्ठा और अनामिका से अँगूठा युक्त करने से 'प्राणाहुति' मुद्रा होती है।

तर्जनी, मध्यमा और अँगूठे के सहयोग से 'अपानाहुति' मुद्रा होती है।

अनामिका और मध्यमा से अँगूठा युक्त करने से 'व्यानाहुति' मुद्रा होती है।

निष्कनिष्ठ---निकाली हुई कनिष्ठा के सिवा अनामा, मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे के एकत्र सहयोग से 'उदानाहुति' मुद्रा होती है और कुछ मुड़ी हुई तथा परस्पर मिली हुई पाँचों अँगुलियों से 'समानाहुति' मुद्रा होती है।

जो मनुष्य भोजनारम्भ में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ ग्रास उपयुक्त प्रकार से मुख में डालकर शेष यथा-रुचि नित्य भोजन करते हैं, वे बड़े भाग्यशाली, भगवद्भक्त और

दीर्घायुषी होते हैं। कारण कि जिस प्रकार बाहर के अग्नि-कुण्ड में उत्तम पदार्थ हवन करने से देवता प्रसन्न होकर सब कुछ देते हैं, उसी प्रकार अपने शरीर-स्थित अग्नि में भोजनारम्भ को पञ्चाहुतियाँ देने से परमात्मा प्रसन्न होकर सुख, सम्पत्ति और सामर्थ्यादि देते हैं।

[५]

पञ्च-देवों की मुद्रायें

१ शंख—बायें हाथ के अँगूठे को दाहिने हाथ की मूंठी में लेकर बायें हाथ की चारों अंगुलियाँ सीधी करके दाहिने हाथ की मूठी को दबावे और दाहिने हाथ के अँगूठे का अग्रभाग बाँयें की तर्जनी के अग्रभाग में लगावे, तो 'शङ्ख' मुद्रा सम्पन्न होती है।

२ घण्टा—तर्जनी और अँगूठे से 'घण्टा' मुद्रा होती है।

३ चक्र—दोनों हाथों को परस्पर देखते हुये करके भलीभाँति फैला दे और कनिष्ठाओं को अँगूठों से लगा दे, तो 'चक्र' मुद्रा बन जाती है।

४ गदा—दोनों हाथ आपस में सम्मुख करके अँगुलियाँ गूँथ दे और बीच में फैले हुए अँगूठे उनमें लगा दे, तो 'गदा' मुद्रा होती है।

५ पद्म—दोनों हाथों को परस्पर मिलाकर मुकुल (फूल की डोंडी या कली) के समान खड़ी कर दे और दोनों अँगूठे उनके भीतर तल-भाग में लगा दे, तो 'पद्म' मुद्रा होती है।

६ वंशी—जिस प्रकार वेणु बजाते हैं, उसी प्रकार बाँयें हाथ के अँगूठे को होठों के पास लगा कर वहीं कनिष्ठा को रखे और तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका को कुछ इधर-उधर चलती हुई सी रखे, तो 'वंशी' मुद्रा होती है।

७ श्रीवत्स—औंधे बाँयें हाथ पर सीधा दाहिना हाथ रखकर, बाँयें की कनिष्ठा दाहिने की तर्जनी से और दाईं कनिष्ठा को बाँयें की तर्जनी से पकड़ कर दोनों की अनामिका और मध्यमा को दोनों के अँगूठों से पकड़ ले, तो 'श्रीवत्स' मुद्रा होती है।

८ कौस्तुभ—दाहिनी कनिष्ठा को उसी के पास की अनामा की पीठ पर लगावे। बाँयीं कनिष्ठा से तर्जनी और अनामा को आबद्ध करे। दाहिने अँगूठे के मूल में बाँयीं अनामिका बाँधे और बाँयें अँगूठे से शेष अँगुलियाँ सीधी लगावे, तो 'कौस्तुभ' मुद्रा होती है।

९ वनमाला—दोनों हाथों की तर्जनी और अँगूठे से गले से आरम्भ करके पाँवों तक वनमाला की तरह दोनों ओर स्पर्श करने से 'वनमाला' मुद्रा होती है।

१० ज्ञान—तर्जनी और अँगूठे के अग्रभाग को हृदय पर लगाकर बायें हस्त-कमल को बाँयें मोड़ पर रखे, तो राम को प्रसन्न करनेवाली 'ज्ञान' मुद्रा होती है।

११ बिल्व—बायें अँगूठे को उपाड़ कर उसके अग्रभाग को दाहिने अँगूठे से आबद्ध करे। शेष अँगुलियों को बाँयें हाथ की अँगुलियों से गाढ़ी बाँधे और काम-बीज (क्लीं) के उच्चारण-सहित हृदय पर स्थापित करे, तो 'बिल्व' मुद्रा होती है। (यह निर्मल बुद्धि-वाले उन उपासकों के काम की है, जो शिव और विष्णु में समान भाव रखते हैं। वे चाहें, तो इसी मुद्रा को तुलसी के रूप में परिणत कर सकते हैं।)

१२ **गरुड़**—दोनों हाथों को विमुख करे अर्थात् दोनों की पीठ परस्पर करे। कनिष्ठाओं को गूंथ दे। दोनों तर्जनियों को (एक को दूसरी में) आश्लिष्ट (मिली हुई) बना दे। दोनों अँगूठों को भी आश्लिष्ट करे, मध्यमा-अनामिका को पङ्खों की भाँति हिलावे, तो विष्णु-प्रिय 'गरुड़-मुद्रा' होती है।

१३ **नारसिंही**—दोनों हाथों को पैरों के बीच में देकर उकड़ूं बैठे, ठोड़ी और होठ समान बना ले, दोनों हथेलियाँ जमीन में लगावे, शरीर बारम्बार छू जाता रहे। मुख को विकृत (डरावनी सूरत का) बना ले और जीभ को बाहर निकाल कर हिलावे, तो नृसिंह को प्रिय 'नारसिंही' मुद्रा होती है।

१४ **वराह**—दाहिने हाथ पर बायाँ हाथ रखकर ऊँचा नीचा करने से 'वराह' मुद्रा होती है।

१५ **हयग्रीव**—बाँयें हाथ की हथेली में दाहिने हाथ की अँगुलियों को अधोमुख लगाने से हयग्रीव भगवान् को प्रसन्न करनेवाली 'हयग्रीव' मुद्रा होती है।

१६ **धनुष**—बाँयें हाथ की मध्यमा के अग्रभाग को तर्जनी के अग्रभाग में जोड़े और अनामिका तथा कनिष्ठा को अँगूठे से दबाकर बायें हाथ के कन्धे के समीप ले जावे, तो 'धनुष' मुद्रा होती है।

१७ **बाण**—दाहिने हाथ को सीधा करके मूंठी बांध ले और उसकी तर्जनी को लम्बी करे।

१८ **परशु**—दोनों हाथों के कर-तल मिलाकर अँगुलियों को तिरछी फैलाने से (फरसे के आकार की) 'परशु' मुद्रा होती है।

१९ **जगन्मोहन**—दोनों हाथों की मूँठियों पर अँगूठा रखने से 'जगन्मोहन' मुद्रा होती है।

२० **काम**—हाथों को सम्पुटित करके अँगुलियों को फैला दे। दोनों तर्जनियों और मध्यमाओं को पीठ पर लगा दे और अँगूठों को मध्यमाओं से जोड़ दे, तो 'काम' मुद्रा होती है।

२१ **मत्स्य**—दाहिने हाथ की पीठ पर बाँयें हाथ की हथेली रखकर अँगूठों को हिलाता रहे, तो 'मत्स्य' मुद्रा होती है।

२२ **कूर्म**—बाईं तर्जनी व अँगूठे के मध्य में अधोमुखी दाईं मध्यमा व अनामा को लगाकर बाएँ अँगूठे में दाईं तर्जनी को लगाये। फिर दाईं कनिष्ठा को बाईं तर्जनी में लगाकर बाएँ हाथ की शेष तीन मध्यमा, अनामा, कनिष्ठा अँगुलियों को ऊपर करके दाएँ हाथ की पीठ पर लगाए। दाएँ अँगूठे को उठाकर दाएँ करतल को 'कूर्म'-पृष्ठ की भाँति बनाए।

२३ **लिंग**—दाहिने हाथ के अँगूठे को उठाकर बाँयें अँगूठे में बाँधे और बाँयें हाथ की अँगुलियों पर दाहिने हाथ की अँगुलियाँ चिपका दे, तो 'लिङ्ग' मुद्रा होती है।

२४ **योनि**—कनिष्ठाओं को आपस में बाँधे, ऊँची की हुई अनामिकाओं से तर्जनी को लगावे। दोनों मध्यमायें फैला दे और अँगूठे उनके समीप से कनिष्ठाओं के समीप कर दे, तो 'योनि' मुद्रा होती है। आगे यही मुद्रा दूसरे प्रकार की है।

२५ **त्रिशूल**—अँगूठे से कनिष्ठा को दबा कर शेष तीनों अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा और अनामा) को सीधी करने से 'त्रिशूल' मुद्रा होती है।

२६ **अक्ष**—अँगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को शेष तीनों अंगुलियों से गूंथ कर फैला देने से 'अक्ष' (रुद्राक्ष) मुद्रा बन जाती है।

२७ **वर**—अधः स्थित दाहिने हाथ को आगे पसारने से 'वर' मुद्रा होती है।

२८ **अभय**—बाँयें हाथ को ऊर्ध्वमुख फैला देने से 'अभय' मुद्रा होती है।

२९ **मृग**—अँगूठे और अनामिका को मिलाकर मध्यमा के अग्रभाग में युक्त करे और शेष अंगुलियों (तर्जनी और कनिष्ठा) को ऊँची रक्खे तो 'मृग' मुद्रा बनती है।

३० **खट्वांग**—दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों को मिलाकर ऊँची करने से 'खट्वाङ्ग' मुद्रा होती है।

३१ **कपाल**—बाँयें हाथ को पात्र के समान बनाकर बाँयीं गोद में स्थापन करे और उठावे तो 'कपाल' मुद्रा बनती है।

३२ **डमरु**—कुछ ढीली मूंठी बाँध कर मध्यमा को सिकोड़े और उसे कान के समीप कुछ हिलाये, तो 'डमरु' मुद्रा बनती है। यह दाहिने हाथ से की जाती है। इससे सब विघ्न मिट जाते हैं।

३३ **दन्त**—दाहिने हाथ की ढीली मूंठी बाँधकर उसमें मध्यमा को सीधी करे और ऊपर को देखती हुई रखे, तो 'दन्त' मुद्रा होती है।

३४ **पाश**—दोनों हाथों की मूंठी बाँधकर बाँयें की तर्जनी को दाहिने की तर्जनी में जोड़ दे और अँगूठे का अग्रभाग उनमें लगा दे, तो 'पाश' मुद्रा बनती है।

३५ **अंकुश**—मध्यमा को सीधी करके उसके मध्य के समीप तर्जनी लगाकर कुछ मोड़ दे, तो 'अंकुश' मुद्रा बनती है। इसका एक प्रकार पृष्ठ ५, क्रमांक २ में पहले लिखा जा चुका है।

३६ **विघ्न**—'दन्त' को बांकी करने से वह 'विघ्न' मुद्रा बन जाती है।

३७ **परशु**—'परशु' का उल्लेख विष्णु के प्रकरण में पृष्ठ ९, क्रमांक १८ पर हो चुका है।

३८ **मोदक**—दाहिने हाथ की अँगुलियों को लड्डू अथवा दाड़िम के रूप में करने से 'मोदक' मुद्रा बनती है। यह गणेश जी को प्रिय है।

३९ **बीजपूर**—दोनों हाथों की मुड़ी हुई पोली अञ्जली को बिजौरे के समान बना लेने से 'बीजपूर' बन जाती है।

४० **पद्म**—'पद्म' का उल्लेख विष्णु के प्रकरण में पृष्ठ ८, क्रमांक ५ पर हो चुका है। यह दोनों कर-पल्लवों को कमल के आकार में करने से बनती है।

४१-४६ **शक्ति की १० मुद्राएँ**—शक्ति की ६ मुद्रायें—पाश (क्रमांक ३४), अंकुश (पृष्ठ ५, क्रमांक २), वर (पृष्ठ ९, क्रमांक २७), अभय (क्रमांक २८), धनुष (पृष्ठ ९, क्रमांक १६) और वाण (पृष्ठ ९, क्रमांक १७)—पहले आ चुकी हैं। शेष ४ मुद्राएँ निम्न प्रकार हैं—

४७ **खड्ग**—दाहिने हाथ की कनिष्ठा और अनामिका को अंगूठे से दबाकर शेष (मध्यमा और तर्जनी) को सीधी फैलावे, तो 'खड्ग' मुद्रा होती है।

४८ **चर्म (ढाल)**—बाँयें हाथ को तिर्छा करके फैलावे और अंगुलियों को (मूँठी बाँधने की भाँति) व्याकुञ्चित (बन्द) कर ले, तो 'चर्म' (ढाल) मुद्रा बनती है।

४९ **मूशल**—बाँयी मूँठी को दाहिनी मूँठी पर रखने से विघ्नों का नाश करनेवाली 'मूशल' मुद्रा होती है।

५० **दुर्ग**—दोनों हाथों की मूठी बाँधकर बाँयीं मूँठो को दाहिनी पर रखे और फिर उनको मस्तक से लगावे, तो 'दुर्ग' मुद्रा बनती है।

[६]

त्रि-शक्ति आदि देवियों की मुद्रायें

भगवती महा-काली

१ महा-योनि—तर्जनी पर मध्यमा, मध्यमा पर अनामिका और अनामिका पर कनिष्ठा को लगाकर सबको इकट्ठा करे और अँगूठों से दबावे, तो महाकाली की 'महा-योनि' मुद्रा बनती है।

२ मुण्ड—बायें हाथ के अँगूठे को मूँठी में दबाकर दाहिने हाथ की मध्यमा और तर्जनी को अंगूठे के अग्रभाग में लगावे और दूसरी मूठी को लम्बित करके स्पर्श किये रहे, तो 'मुण्ड मुद्रा' बनती है।

३ भूतिनी—अँगुलियों को योनि-मुद्रा की भाँति बनाकर मध्यमा को बाँकी करे और उसके अग्र-भाग में अँगूठा लगावे, तो 'भूतिनी' मुद्रा होती है।

भगवती महा-लक्ष्मी

पंकजा (लक्ष्मी)—पूर्ववत् चक्र-मुद्रा बनाकर दोनों मध्यमायें फैला दे और कनिष्ठा को उनके आगे लगा दे, तो सर्व-सम्पत्ति देनेवाली महा-लक्ष्मी की 'पङ्कजा' मुद्रा होती है।

भगवती महासरस्वती

१ अक्ष-माला—सरस्वती की 'अक्ष-माला' का उल्लेख पहले शिव के प्रकरण में पृष्ठ ८ क्रमांक २६ पर हो चुका है।

२ वीणा—दोनों हाथों को वीणा बजाने की भाँति करके मस्तक को इधर-उधर हिलावे, तो 'वीणा' मुद्रा बन जाती है।

३ व्याख्यान—दाहिने हाथ की तर्जनी के अग्र-भाग पर उसी हाथ के अंगूठे का अग्र-भाग लगाकर फैलाने से 'व्याख्यान' मुद्रा होती है।

४ पुस्तक—कुछ खुली हुई बाँयीं मूँठी को स्वाभिमुखी करने से 'पुस्तक' मुद्रा बनती है।

भगवती तारा

१ योनि, २ भूतिनी—ये दोनों इसी पृष्ठ के क्रमांक १ और ३ पर आ गई हैं।

३ बीज—दोनों हाथों को अर्ध-चन्द्राकार जैसे बनाकर दोनों तर्जनियों और दोनों अंगूठों को आपस में मिलावे। उनके नीचे मध्यमा में कनिष्ठा को जोड़े और सबके नीचे अनामिका लगावे, तो सब सिद्धियों को बढ़ानेवाली 'बीज' मुद्रा होती है।

४ धूम्रिनी—अनामिका की पीठ पर कनिष्ठा को लगावे, अंगूठों से मध्यमाओं को बाँधे, अनामिकाओं को बाँकी करके अंगूठों के मूल में जोड़ दे और तर्जनी को सीधी करके युक्त करे, तो 'धूमिनी' मुद्रा बन जाती है।

५ लेलिहा—तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को अधोमुख बराबर करके अंगूठे को अनामिका में जोड़े और सीधी करे, तो 'लेलिहा' होती है। यही जीव-न्यास में पृष्ठ ६ पर कही है।

इसका दूसरा प्रकार—जीभ को बाहर निकाल कर हिलावे।

भगवती त्रिपुरा

१ सर्व-संक्षोभिणी—पहली मध्यमा को दूसरी मध्यमा से मिलावे, कनिष्ठा को अंगूठे से दबावे, तर्जनी को सीधी करे और मध्यमा पर अनामिका लगावे।

२ सर्व-विद्राविणी—पूर्वोक्त विक्षोभ-कारिणी की क्रिया में केवल मध्यमा को सीधी कर देने से 'सर्व-विद्रावणी' मुद्रा बन जाती है।

३ सर्वाकर्षणी—अंगूठे को कनिष्ठा और अनामा के ऊपर रखे। यह मुद्रा त्रैलोक्य को आकर्षण करनेवाली है।

४ सर्व-वश्य-करी—दोनों हाथों को पुटाकार करके दोनों तर्जनियाँ बाँकी करे। उनके बीच में मध्यमा लगावे। इसी प्रकार दोनों कनिष्ठायें बांकी करके उनके बीच में अनामिका लगावे। सबको परस्पर गुंथी हुई जैसी दबा दे और उनके ऊपर दोनों अंगूठे लगावें।

५ उन्मादिनी—दोनों हाथ सम्मुख करके मध्यमाओं से मध्य-गत कनिष्ठाओं को पकड़े, अनामिकायें सीधी रखे, उनके बाहर की तरफ दोनों तर्जनियाँ लगावे और अँगूठों को दण्डाकार सीधा करे तथा वे मध्यमा के अग्रभाग में रहें। यह मुद्रा योषिताओं को क्लेदित करनेवाली है।

६ महांकुशा—पृष्ठ १० पर क्रमांक ३५ को देखें।

७ खेचरी—बाँयें हाथ को दाहिने हाथ में उलटा रखकर कनिष्ठाओं और अनामिकाओं को तर्जनी से पकड़े, मध्यमा के पूर्वार्ध को मिलावे और अँगूठे को सीधा करके 'पार्थिव' स्थान (ललाट) में लगा दे।

८-९ 'बीज' और 'योनि'—इन्हें पृष्ठ ११ पर क्रमशः क्रमांक ३ और १ पर देखें।

भगवती भुवनेश्वरी की ८ मुद्रायें

१ पाश (पृष्ठ १० क्रमांक ३४), २ अंकुश (पृष्ठ १०, क्रमांक ३५), ३ वर (पृष्ठ ९, क्रमांक २७), ४ अभय (पृष्ठ १०, क्रमांक २८), ५ पुस्तक (पृष्ठ ११, क्रमांक ४), ६ ज्ञान (पृष्ठ ८, क्रमांक १०), ७ बीज (पृष्ठ ११, क्रमांक ३), और ८ योनि (पृष्ठ ११, क्रमांक १)।

[७]

ध्यानावेश—प्रार्थना में

१ विघ्नघ्नी—दोनों मूंठियां अभिमुख मिलाकर फिर अँगूठों को खड़े करे।

२ विस्मय—दाहिने हाथ की मूँठी को गाढ़ी बाँध कर उसी की तर्जनी को नाक के अग्र-भाग में लगावे। यह विस्मय और आवेश करनेवाली है।

३ प्रार्थना—दोनों हाथों की अँगुलियों को फैलाकर आश्लिष्ट (परस्पर मिली हुई) करके हृदय के समीप सम्मुख करे।

४ अर्घ्य—दोनों हाथों की अञ्जलि में गंध-पुष्पादि-युक्त जल लेकर उसे सूर्यादि देवों के सामने छोड़ने से यह मुद्रा होती है।

५ सूर्य-प्रदर्शनी—दाहिने हाथ को उलटा और बांयें हाथ को सुलटा रखकर दोनों की अँगुलियों आमने-सामने करे। फिर बाँयीं तर्जनी को दाहिनी कनिष्ठा से और दाहिनी तर्जनी को बांयीं कनिष्ठा से पकड़ ले। इसी प्रकार बांयीं मध्यमा और अनामिका को दाहिने अँगूठे से और दाहिनी मध्यमा तथा अनामा को बायें अँगूठे से बाँधें तो सूर्य को देखने की सूर्य-प्रदर्शनी मुद्रा होती है। इसके द्वारा प्रतिदिन सूर्य का दर्शन करने से नेत्र की ज्योति बढ़ जाती है।

[८]

योग-साधना में

१ मुकुल—दोनों हाथों को सम्मुख करके अँगुलियों को कुछ कुञ्चित करे (मोड़े), तो 'मुकुल' (कली) मुद्रा होती है।

२ पंकज—इसी 'मुकुल' को अर्थात् किञ्चित् संकुचित खड़ी अँगुलियों को फैला दे।

३ व्याक्रोशी—पूर्वोक्त 'मुकुल' में से दोनों तर्जनियों को बाहर निकाल दे।

४ निष्ठुर—'मुकुल' के दोनों अँगूठों को कुञ्चित करके अर्थात् उनको मोड़कर अपनी अँगुलियों में दबा ले और उनको ऊँचे करके दोनों हाथों को परस्पर मिलावे, तो 'निष्ठुरा' मुद्रा बनती है।

५ योग—तर्जनी तथा कनिष्ठा को कुछ मोड़ कर हथेली के बीच में इस प्रकार रखे कि अधोमुखी अँगुलियों के नख दीखते रहें, शेष चारों मध्यमाओं और अनामिकाओं को पीठ में खड़ी करे और अँगूठों को एक करके खड़े करे, तो 'योग'-मुद्रा सम्पन्न होती है।

६ महामुद्रा—मूल-द्वार (गुदा) को एँड़ी से दबाकर दाहिने हाथ से पाँव की अँगुली रख दे और कण्ठ को मोड़कर भ्रूमध्य में देखे, तो 'महा-मुद्रा' होती है।

७-८ उड्डीयान और महाखग—पेट को अन्दर धँसाने से 'उड्डीयान' और उसी को विश्राम देने से 'महा-खग' मुद्रा होती है। 'उड्डीयान' में पेट अन्दर चला जाता है और नाभि ऊपर आ जाती है। उस अवस्था में उसे विश्राम देने अर्थात् उसको यथावत् ठहराने से 'महा-खग' मुद्रा होती है।

९ जालन्धर---कण्ठ को सिकोड़ कर ठोड़ी को हृदय से लगावे।

१० मूल-बन्ध---बांयी एँड़ी से गुदा को दबाकर मेरुदण्ड की गाँठ को दबावे और मेरु (मूत्रेन्द्रिय) को एँड़ी से दबाये।

११ महा-वेध—उड्डीयान मुद्रा में 'कुम्भक' प्राणायाम करे, तो 'महा-वेध' होती है।

१२ विपरीत-करणी—सूर्य-नाड़ी (नाक के दाहिने छेद) से आनेवाले श्वास को ऊपर चढ़ावे और चन्द्र-नाड़ी (बायें छेद से) आनेवाले श्वास को नीचे उतारे, तो 'विपरीत-करणी' मुद्रा होती है।

१३ वज्रोली—हाथों की दोनों हथेलियों को भूमि से लगाकर दोनों पाँव ऊँचे करके अधः शरीर खड़ा रहे।

१४ माण्डूकी—मुँह को मूंद कर जीभ को तलवे से लगावे और यथाक्रम सहस्रार से निकलनेवाले अमृत को पीवे।

१५ शाम्भवी—दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि स्थिर करके आत्माराम को देखता हुआ ध्यान करे, तो 'शाम्भवी' मुद्रा होती है।

पञ्च-तत्व की मुद्रायें

१ पृथ्वी—पीतवर्ण 'लं' बीज, चार कोण वाले चौकोर (चतुष्कोण) और ब्रह्मदेव को हृदय-कमल में विराजमान ध्यान करता हुआ बहुत देर तक कुम्भक प्राणायाम करे, तो 'पृथ्वी' मुद्रा होती है।

२ आम्भसी (जल)—शङ्ख के समान सुश्वेत वर्ण, चन्द्र के समान निर्मल, कुन्द (पुष्प) के समान सफेद 'वं' बीज, विष्णुदेव और अमृत-समान सुस्वादु जल-तत्व का ध्यान करता हुआ बहुत देर तक कुम्भक करे।

३ वैश्वानरी (तेज)—इन्द्र-गोप (सावन की तीज, जिसे वीर-बहूटी भी कहते हैं) के समान (लाल) रंग, नाभि-स्थान, 'रं' बीज, रुद्रदेव और तेज-समूह का ध्यान करता हुआ बहुत देर तक कुम्भक करे।

४ वायु—धुएँ के समान वर्ण, 'यं' बीज, ईश्वर देव और सत्वगुण ऐसे वायु का ध्यान करता हुआ बहुत देर तक कुम्भक करे।

५ आकाश—समुद्र के शुद्ध जल जैसा वर्ण, 'हं' बीज और सदाशिव देव ऐसे प्रकाश का ध्यान करता हुआ कुम्भक करे।

६ अश्विनी—गुदा को बारम्बार मीचे (सिकोड़े) और खोले तो शक्ति बढ़ानेवाली 'अश्विनी' मुद्रा होती है।

७ पाशिनी—गले के दोनों ओर पाँव करके पीठ पर रखे।

८ काकी—होठों को काग की चोंच के समान (नाली जैसे) बनाकर उनसे बाहर की वायु को धीरे-धीरे (जितना खींच सके) खींचे और इस क्रिया से श्वास लेता रहकर वायु का पान करे तो सब रोगों को मिटानेवाली 'काकी' मुद्रा होती है।

९ मातङ्गिनी—कण्ठ तक डूब जायें, इतने जल में खड़े होकर नाक से जल पीवे और मुँह से निकालता रहे। इस प्रकार कई बार करने से 'मातङ्गिनी' मुद्रा होती है।

१० भुजङ्गिनी—मुँह को कुछ फैलाकर पवन पीवे तो 'भुजङ्गिनी' मुद्रा होती है।

११ **रिपु-जिह्वा-ग्रहा**—अँगूठे को अन्दर लेकर मूँठी बाँधने से, अँगूठे का अग्रभाग तर्जनी के समीप होकर मूँठी से अथवा मूँठी बांधकर उनके ऊपर अँगूठा लगाने से 'रिपु-जिह्वा' अथवा 'रिपु-जिह्वा-ग्रहा' मुद्रा होती है।

१२ **गालिनी**—दाहने हाथ की कनिष्ठा को बायें हाथ के अँगूठे से और बायें हाथ के अँगूठे को दाहने हाथ की कनिष्ठा से मिलाकर तर्जनी, मध्यमा और अनामा का सहयोग करे, तो शङ्खो-दकादि शुद्ध करनेवाली 'गालिनी' मुद्रा बनती है।

१३ **सर्व-संक्षोभ-कारिणी**—मध्यमा को मध्यमा में लगावे, कनिष्ठा को अँगूठे से पकड़े और दोनों तर्जनियां सीधी करके अनामिका और मध्यमा पर लगावे।

१४ **तर्जनी**—बायें हाथ की मूंठी बांधकर तर्जनी को सीधी करे। इसका उपयोग तर्जन अथवा निषेध में किया जाता है।

१५ **क्रोध**—मूठी बाँध कर तर्जनी अलग कर दे और हाथ को सीधा रक्खे।

[१०]

शान्ति-रक्षण

१-६ **शस्त्रास्त्र-निवारक ६ मुद्रायें**—पद्म (पृष्ठ ८, क्रमांक ५), पाश (पृष्ठ१०, क्रमाङ्क ३४), गदा (पृष्ठ ८, क्रमाङ्क ४), खड्ग (पृष्ठ १०, क्रमाङ्क ४७), मूसल (पृष्ठ १०, क्रमाङ्क ४६), और अशनि—ये छः मुद्रायें शस्त्रास्त्र-निवारण में कही हैं। इनके प्रयोग से शान्ति मिलती है। इनमें पद्मादि ५ पहले आ गई हैं। केवल अशनि मुद्रा नहीं आई, वह इस प्रकार की जाती है—

कनिष्ठा को अँगूठे के अग्रभाग से युक्त करे और अन्य तीन को यथावत् सीधी रखे, तो तीन कोण की 'अशनि' अथवा 'कुशलि' मुद्रा होती है।

७-८ **स्फोट और शुभङ्करी**—अँगूठे और तर्जनी के मिलाने से 'स्फोट' (छोटिका) और अँगूठे तथा मध्यमा के योग से अत्युच्च 'शुभङ्करी' मुद्रा होती है।

९ **मुष्टी**—दाहने हाथ की मूठी बाँधकर समुन्नत करने से अभिघात के उपयोगी 'मुष्टी' मुद्रा हो जाती है। यह सब विघ्नों के समूह को तोड़ देती है।

१० **शक्ति**—दोनों हाथों की मूंठी बाँधकर बांयीं पर दाहनी रक्खे व उनको मस्तक से लगावे।

११ **पञ्चमुखी**—दोनों हाथों के मणिवन्ध मिलाकर अँगुलियों के अग्रभाग मिलावे और उनके युग्म (दो-दो मिली हुई) को कुछ अलग रक्खे तो शिव-सान्निध्य देनेवाली 'पञ्च-मुखी' मुद्रा बनती है।

१२ **प्रार्थना**—आरम्भ में 'प्रार्थना' और विसर्जन में 'संहार' मुद्रा उपयोगी होती है। इनमें दोनों हाथों की अञ्जलि बना कर हृदय के समीप रखने और विनम्र भाव से नत-मस्तक होने से 'प्रार्थना' मुद्रा होती है।

१३ **संहार**—बाँएँ हाथ को औंधा और दाहने हाथ को सीधा करके उनकी अँगुलियों को आपस में गूंथे तथा अदल-बदल कर दे तो 'संहार' मुद्रा होती है।

१४-१७ **बलिदान की चार मुद्राएँ**—मध्यमा को कुछ बाँकी करके गणेश जी को और अँगूठे तथा तर्जनी को मिला कर बटुक-भैरव को बलि देनी चाहिये।

बाँयें हाथ की अनामिका और अँगूठे से क्षेत्रपाल को तथा अनामा, मध्यमा और अँगूठे के योग से चौंसठ योगिनियों को बलि देनी चाहिये।

[११]

होम की मुद्रायें

जिस प्रकार मन्त्र-हीन होम की आहुति को देवता ग्रहण नहीं करते, उसी प्रकार मुद्रा-हीन आहुति को भी वे नहीं लेते। अतः दोनों करने चाहिए।

मोह-वश होकर जो मुद्रा-हीन होम करने की इच्छा करते हैं, वे हीन-बुद्धि आप स्वयं भी और उनके यजमान भी अभीष्ट सिद्धि से हीन हो जाते हैं।

सूर्यकान्त या अरणि से उत्पन्न की हुई अथवा श्रोत्रिय के घर की अग्नि को काँसे या मिट्टी के पात्र में ग्रहण करे और दूसरे पात्र से ढँक कर लावे।

अग्नि और जठराग्नि दोनों के स्वामी परमात्मा का स्मरण कर वह्नि-बीज 'रं' से उसे चैतन्य करे। अवगुण्ठिनी मुद्रा और कवच मन्त्र से अग्नि का अवगुण्ठन (मुखाच्छादन) कर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कर अग्नि की स्थापना करे।

१ अवगुण्ठिनी—बाँयें हाथ की मूंठी बाँधकर उसमें से तर्जनी अलग कर दे अथवा दोनों तर्जनियों को परस्पर मिलाकर अग्नि के समीप घुमावे।

२-३ सप्त-जिह्वा और प्रज्वालिनी—दोनों मणि-बन्धों को युक्त करे, अँगुलियों को फैला दे और दोनों कनिष्ठाओं से अँगूठे लगाकर हाथ सीधा करे। इस प्रकार करने से 'सप्तजिह्वा' मुद्रा हो जाती है। इसी को 'ज्वालिनी' और 'प्रज्वालिनी' मुद्रा भी कहते हैं। दोनों हाथों की बीच की अँगुलियां और मूल में अँगूठे लगी हुई सम्मिलित कनिष्ठाओं को एक मानने से 'सप्त-जिह्वा' और अँगूठे लगी हुई कनिष्ठाओं को पृथक् रखने से 'प्रज्वालिनी' होती है।

अग्नि की सात जिह्वायें होती हैं। उनमें आगे लिखे अनुसार जैसा काम हो, उसी के अनुकूल जिह्वा की पूजाकर आहुति दे। यथा—१ शान्ति-सम्बन्धी कामों में सुप्रभा, २ वशीकरणादि में रक्ता, ३ स्तम्भन में सुवर्णा, ४ विद्वेष में गगना (आकाश जैसे रंग को), ५ उच्चाटन में अतिरिक्ता, ६ मारण में कृष्णा और अन्य सब कार्यों में ७ बहुरूपा का पूजन करे।

४-५-६ मृगी, हंसी, शूकरी—होम में मृगी, हंसी और शूकरी ये तीन मुद्रायें मुख्य हैं। इनमें कनिष्ठा और तर्जनी से 'मृगी' मुद्रा होती है। होम में इसका प्राधान्य है।

कनिष्ठा को अलग रखने से 'हंसी' और सम्पूर्ण अंगुलियों को एकत्र करने से 'शूकरी' मुद्रा होती है। शान्ति और पुष्टि के होम में मृगी और हंसी मुद्रा उत्तम फल देती है।

अभिचार के कामों में 'शूकरी' मुद्रा से और शान्ति के लिये तर्जनी और अंगूठे से आहुति दे।

७ अन्य आहुति-मुद्राएँ—दाह, ज्वर और अभिघात जैसे कामों के लिये अनामा और अँगूष्ठ की मुद्रा से आहुति देनी चाहिये और विद्वेष, उच्चाटन तथा मारण के होम में भी इसी मुद्रा से आहुति दे।

प्रत्येक प्रकार की बाधा दूर करने के हवन में तर्जनी और मध्यमा से तथा भूतादि के भय को शान्त करने के हवन में तर्जनी, मध्यमा और अँगूठे से आहुति देनी चाहिये।

मोहन, उच्चाटन, क्षोभण और आकर्षण आदि के उपयोगी होम में 'कनिष्ठा, मध्यमा और अँगठे' के योग से बनी मुद्रा से आहुति देनी चाहिये।

मोहन, वशीकरण और प्रीति-सम्वर्द्धन के होम में 'कनिष्ठा और प्रदेशिनी' के योग से आहुति देनी चाहिये। इनसे सबकी सिद्धि होती है।

सब प्रकार के आकर्षण तथा दूर देश के निवासियों के बुलाने आदि के हवन में 'तर्जनी और अनामिका' के योग से आहुति देनी चाहिये।

शरीर के आरोग्य, प्रभा, नीति, पुष्टि, स्नेह, मैत्री और उत्साह आदि के उपयोगी हवन में 'तर्जनी और अनामिका' से आहुति देने से उक्त सब काम सफल होते हैं।

८ आवशिष्टिका मुद्रा—प्रत्येक प्रकार के होम की अवशिष्ट सामग्री को शुद्ध पात्र में एकत्र करे और उसे दोनों हाथों में लेकर अग्नि में छोड़ दे, तो 'आवशिष्टिका' मुद्रा होती है। इस प्रकार की दी हुई आहुति को 'स्विष्टकृत्' होम भी कहते हैं।

शास्त्रोक्त विधि से किये हुये होम से तथा यथोचित सामग्री के योग से और मुद्रा तथा मन्त्रों के सहयोग से सब प्रकार के अभीष्टों की स्वतः सिद्धि होती है।

तान्त्रिक पूजोपचार

(१) उपचार-तालिका

तान्त्रिक पूजा में उपचारों का विशेष महत्व है। 'उपचार' का शब्दार्थ 'ज्ञानमाला' में इस प्रकार लिखा है—'देवता के प्रति भक्ति-पूर्वक इन्हें करने से ये साधक को उसके सान्निध्य में पहुँचाते हैं। अतएव इन्हें 'उपचार' कहा जाता है।'

उपचार कितने प्रकार के हैं, इस सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों में अलग-अलग निर्देश मिलते हैं। शब्द-कल्पद्रुम के पूजा-प्रकरण में एकोपचार का भी उल्लेख है। यथा—

केवलेन पुष्पेण………। केवलेनाक्षतेनैव केवलेन जलेन वा ॥ इति

इसके अनुसार पुष्प या अक्षत या जल—इन तीनों में से किसी एक ही से पूजन का काम चलाया जा सकता है। यही 'एकोपचार' है। इसी प्रकार उसी ग्रन्थ में वहीं दो तथा त्र्युपचारों का भी विधान मिलता है। यथा—गन्ध और पुष्प को ग्रहण करने से 'द्व्युपचार' की प्राप्ति होती है और धूप-दीप को छोड़कर अन्य तीन अर्थात् गन्ध, पुष्प और नैवेद्य---ये तीन 'त्र्युपचार' में संगृहीत होते हैं।

'पञ्चोपचार' के सम्बन्ध में विश्वामित्र-संहिता में लिखा है—जिस पूजा का प्रारम्भ गन्धादि से होकर नैवेद्य में समाप्ति होती हो, उसे पञ्चोपचारवाली माना जाता है।

इन पञ्चोपचारों का स्पष्टीकरण यजुर्वेदीयाह्निक सूत्रावली के १०८ वें पत्र में इस प्रकार किया गया है—गन्ध - पुष्पे धूप-दीपौ नैवेद्यं पञ्च ते क्रमात्।

शारदातिलक के चौथे पटल में इनका निर्देश किया गया है। यथा—

गन्ध-पुष्पे धूप-दीपौ नैवेद्यं पञ्च संस्मृताः। सपर्या पञ्चधा प्रोक्ता तासामेकां समाचरेत् ॥

जाबालि के अनुसार पञ्चोपचार ये हैं—

ध्यानमावाहनं चैव भक्त्या यच्च निवेदनं। नीराजनं प्रणामश्च पञ्च पूजोपचारकाः ॥

इस प्रकार पञ्चोपचार के दो प्रकार हुये, जो इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

१---१ गन्ध, २ पुष्प, ३ धूप, ४ दीप, ५ नैवेद्य।

२---१ ध्यान, २ आवाहन, ३ निवेदन, ४ नीराजन, ५ प्रणाम।

'सप्तोपचार' के सम्बन्ध में प्रयोगसार में लिखा है—अन्य लोगों ने—१ अर्घ्य, २ गन्ध, ३ पुष्प, ४ अक्षत, ५ धूप, ६ दीप और ७ नैवेद्य इन सात अङ्गोंवाली सपर्या का गान किया है।

'दशोपचार' ज्ञानमाला में इस प्रकार गिनाये गये हैं—१ अर्घ्य, २ पाद्य, ३ आचमन, ४ स्नान, ५ वस्त्र, ६ गन्ध, ७ पुष्प, ८ धूप, ९ दीप और १० नैवेद्य।

शारदातिलक में कुछ अन्तर है। यथा—उपर्युक्त तालिका के 'स्नान' और 'वस्त्र' के स्थान पर क्रमशः 'मधुपर्क' और 'पुनः आचमन' होना चाहिये।

द्वादशोपचार-विषय में लिखा मिलता है कि—आसन, स्वागत, वस्त्र और भूषा को छोड़कर (सोलह उपचारों में से) द्वादशोपचार होते हैं। अतः पहले षोडशोपचार का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में परमानन्द तन्त्र में लिखा है—

हे ईश्वरि शिवे ! सोलह उपचारों की इस प्रकार गणना करे—१ पाद्य, २ अर्घ्य, ३ आचमन, ४ स्नान, ५ वस्त्र, ६ भूषण, ७ गन्ध, ८ पुष्प, ९ धूप, १० दीप, ११ नैवेद्य, १२ ताम्बूल, १३ नीराजन, १४ अञ्जलि, १५ परिक्रमा और १६ नमस्कार।

परशुराम कल्पसूत्र में इन उपचारों की गणना इस प्रकार की गई है—

ऊपर की तालिका के 'भूषण, अञ्जलि, परिक्रमा' और 'नमस्कार' ये चार उपचार न होकर 'छत्र, चामर, दर्पण' और 'रक्षा' इन उपचारों को मिलाकर षोडशोपचार कहे गये हैं।

ज्ञानमाला में षोडशोपचार और ही क्रम से गिनाये गये हैं। यथा—१ आसन, २ स्वागत, ३ अर्घ्य, ४ पाद्य, ५ आचमनीय, ६ मधुपर्क, ७ स्नान, ८ वस्त्र, ९ आभूषण, १० सुगन्धि, ११ पुष्प, १२ धूप, १३ दीप, १४ नैवेद्य, १५ माला और १६ अनुलेपन।

नागदेव के द्वारा उक्त तालिका के स्वागत, मधुपर्क, आभूषण, सुगन्धि, पुष्प और अनुलेपन इन उपचारों को न लेकर आवाहन, उपवीत, गन्ध, नमस्कार, प्रदक्षिणा और उद्वासन से सोलह उपचारों की संख्या-पूर्ति की है।

विश्वामित्र संहिता में षोडशोपचारों का क्रम इस प्रकार बताया गया है—

देवता को प्रिय इन सोलह उपचारों की कल्पना करे—१ आसन, २ स्वागत, ३ पाद्य, ४ अर्घ्य, ५ आचमनीय, ६ मधुपर्क, ७ स्नान, ८ वस्त्र, ९ अलङ्कार, १० गन्ध, ११ पुष्प, १२ धूप, १३ दीप, १४ नैवेद्य, १५ ताम्बूल और १६ नमस्कार।

क्रम-प्रदीप में सोलहों उपचारों को इस प्रकार गिनाया है—

आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, माला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जलि—ये १६ उपचार कहे गये हैं।

अष्टत्रिंशोपचारों की गणना ज्ञान-माला में इस प्रकार की गई है—

१ आसन, २ आवाहन, ३ उपस्थिति, ४ सान्निध्य, ५ आभिमुख्य, ६ स्थिरीकृति, ७ प्रसाधन, ८ अर्घ्य, ९ पाद्य, १० आचमन, ११ मधुपर्क, १२ उपस्पृश, १३ स्नान, १४ नीराजन, १५ वस्त्र, १६ आचमन, १७ उपवीत, १८ पुनराचमन, १९ भूषा, २० दर्पणालोकन, २१ गन्ध, २२ पुष्प, २३ धूप, २४ दीप, २५ नैवेद्य, २६ पानीय, २७ आचमन, २८ हस्तबास, २९ ताम्बूल, ३० अनुलेप, ३१ पुष्पाञ्जलि, ३२ गीत, ३३ वाद्य, ३४ नृत्य, ३५ स्तुति, ३६ प्रदक्षिणा, ३७ पुष्पाञ्जलि, ३८ नमस्कार—ये अड़तीस उपचार प्रसिद्ध हैं।

केवल शक्ति-पूजा में प्रयुक्त होनेवाले चतुःषष्ठि उपचारों का वर्णन सिद्ध-यामल में इस प्रकार दिया गया है—

१ आसनारोपणम् २ सुगन्धि-तैलाभ्यङ्गः ३ मज्जन-शाला-प्रवेशनम् ४ मज्जन-मणि-पीठोपवेशनम् ५ दिव्य-स्नानीयकम् ६ उद्वर्तन-स्नानम् ७ उष्णोदक-स्नानम् ८ कनक-कलश-स्थित-सकल-तीर्थाभिषेकः ९ धौत-वस्त्र-परिमार्जनम् १० अरुण-दुकूल-परिधानम् ११ अरुण-दुकूलोत्तरीयम् १२ आलेपना-मण्डप-प्रवेशनम् १३ आलेपन (मण्डप) मणि-पीठोपवेशनम् १४ चन्दनागरु-कुंकुम-कर्पूर-कस्तूरी-रोचना-दिव्य-गन्ध-सर्वानुलेपनम् १५ केशमारभ्य कालागरु-धूप-मल्लिका-मालती-जाति-चम्पकाशोक-शत-पत्र-पूग-कुड्मली-पुन्नाग-यूथी-सर्वर्तु-कुसुम-माला-भूषणम् १६ भूषण-मण्डप-प्रवेशनम् १७ भूषण-मणि-पीठोपवेशनम् १८ नव-मणि-मुकुटम् १९ चन्द्र-शकलम् २० सीमन्त-सिन्दूरम् २१ तिलक-रत्नम् २२ कालाञ्जनम् २३ नासाभरणम् २४ अधर-यावकम् २५ ग्रथन-भूषणम् २६ कनक-चित्र-पदकम् २७ महा-पदकम् २८ मुक्तावलिः २९ एकावलिः ३० देव-छन्दकः ३१ केयूर-युगलम् ३२ वलयावलिः ३३ हारावलिः ३४ गर्भकावलिः ३५ काञ्ची-दाम ३६ कटि-सूत्रम् ३७ शोभनाख्याभरणम् ३८ पाद-वाटकम् ३९ रत्न-नूपुरम् ४० पादांगुलीयकम् ४१ एक-करे पाशः ४२ अन्य-करेऽकुंशम् ४३ इतर-करे पुण्ड्रेक्षु-चापः ४४ अपर-करे पुष्प-बाणः ४५ श्रीमन्माणिक्य-पादुके ४६ स्व-समान-वेशास्त्रावरण-देवताभिः सह सिंहासनारोहणम् ४७ कामेश्वर-पर्यङ्कारोहणम् ४८ अमृताशन-चषकम् ४९ आचमनीयकम् ५० कर्पूर-बीटिका ५१ आनन्दोल्लास-विलास-हासः ५२ मङ्गलारार्तिकम् ५३ श्वेत-छत्रम् ५४ चामर-युगलम् ५५ दर्पणः ५६ ताल-वृत्तम् ५७ गन्धः ५८ पुष्पम् ५९ धूपः ६० दीपः ६१ नैवेद्यम् ६२ पुनराचमनीयकम् ६३ ताम्बूलम् ६४ वन्दनम् ।

चौंसठ उपचारों की एक दूसरी तालिका परशुराम कल्पसूत्र के १३८ पृष्ठ पर ४ थे खण्ड में श्री ललिता-क्रम में इस प्रकार दी है—

त्रितारीमुच्चार्यं पाद्यं कल्पयामि नमः—इति क्रमेण आभरणावरोपणं, सुगन्धि-तैलाभ्यङ्ग-मज्जन-शाला-प्रवेशनम्, मज्जन-मण्डप-मणि-पीठोपवेशनं, दिव्य-स्नानीयोद्वर्तनं, उष्णोदक-स्नानं, कनक - कलश-च्युत-सकल-तीर्थाभिषेकं, धौत-वस्त्र-परिमार्जनं, अरुण-दुकूल-परिधानं, अरुण - कुचोत्तरीयमालेप - मण्डप-प्रवेशनमालेप-मण्डप-मणि-पीठोपवेशनं, चन्दनागरु-कुंकुम-संकु-मृग-मद-कर्पूर-कस्तूरी - गोरोचनादि-दिव्य—गन्ध-सर्वाङ्गीण-विलेपनं, केश-भरस्य कालागरु-धूपं, मल्लिका-मालती-जाती-चम्पकाशोक-शतपत्र-पूग-कुड्मली-पुन्नाग-कल्हार-मुख्याङ्ग-सर्वर्तु-कुसुम-मालां, भूषण-मण्डप-प्रवेशनं, भूषण-मण्डप-मणि-पीठोपवेशनं, नव-मणि-मुकुटं, चन्द्र-शकलं, सीमान्त-सिन्दूरं, तिलक-रत्नं, कालाञ्जनं, पाली-युगलं, मणि-कुण्डल-युगलं, नासाभरणं, अधर-यावकं, प्रथम-भूषणं, कनक-चिन्ताकं, पदकं, महा-सपकं, मुक्तावलिं, एकावलिं, छन्न-वीरं, केयूर-युगल-चतुष्टयं, वलयावलिं, उर्मिकावलिं, काञ्चो-दाम-कटि-सूत्रं, सौभाग्याभरणं, पाद-कटकं, रत्न-नूपुरं, पादांगुलीयकं, एक-करे पाशं, अन्य-करे अंकुशं, इतर करे पुण्ड्रेक्षु-चापं, अपर करे पुष्प-बाणान्, श्रीमन्माणिक्य-पादुके, स्व-समान-वेषाभिरावरण-देवताभिः सह महा-चक्राधिरोहणं, कामेश्वराङ्क-पर्यङ्कोपवेशनं, अमृतासव-चषकं, आचमनीयं, कर्पूर-वीटिकां, आनन्दोल्लास-विलास-हासं, मङ्गलारार्तिकं, छत्रं, चामर-युगलं, दर्पणं, ताल-वृन्तं, गन्धं, पुष्पं, धूपं, दीपं, नैवेद्यं कल्पयामि नमः—इति चतुष्षष्ट्युपचारान् विधाय ॥

इस प्रकार चौंसठ उपचारों के होते हुये भी तन्त्रान्तर में आठ उपचार और गिनाये हैं। इसके प्रमाण-स्वरूप सभाष्य 'श्रीललिता-सहस्रनाम' ग्रन्थ के १०६ श्लोक के भाष्य में श्री भास्कर राय की निम्नोक्ति द्रष्टव्य है—'चौंसठ उपचार भ० परशुराम ने कल्पसूत्र में गिनाये हैं। आठ और भी तन्त्रान्तर में हैं।'

फिर श्री भास्करराय ने आठ उपचारों को प्रकट किया है, जो ये हैं—

१ शिव-पाद-प्रसूनों को धारण करना; २ आत्म-रोपण; ३ परिवार-विसृष्टि; ४ गुरु-भक्तों का अर्चन; ५ शैव पुस्तक की पूजा; ६ शिवाग्नि-यजन; ७ शिव-पादोदक को ग्रहण करना और ८ अग्नि-सहित प्राणाग्नि-होत्र—इन आठ उपचारों को ६४ उपचारों के साथ सम्मिलित कर ७२ उपचार होते हैं।

उपर्युक्त १-२-३-४-५-७-१०-१२-१६-३८-६४-७२ संख्यक उपचारों के सिवा उनके प्रतिनिधि उपचार भी दूसरे-दूसरे तन्त्रों में कहे गये हैं; जिनके योग से पूजा में और भी विस्तार सम्भव है। यह साधक के सामर्थ्य पर निर्भर है। त्रिपुरार्णव में इसी को लक्ष्य करके कहा गया है—

सम्भव होने पर और भी अधिक उपचारों से पूजन करे। इन अतिरिक्त उपचारों में शिविका, गज, अश्व, नृत्यादि आदि की परिगणना हो जाती है।

अब यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उचित ही है कि यद्यपि उपर्युक्त उपचार-तालिकाएँ प्रायः नियत ही हैं, तथापि उनमें से यदि किन्हीं उपचारों का अभाव हो, तो भी श्रद्धालु साधक को पूजारम्भ से समाप्ति तक का जो पुण्य फल होता है, वह अवश्य प्राप्त होता है। श्री कालिका पुराण के ५५ वें अध्याय में लिखा भी है—जहाँ-जहाँ जो मनुष्य निर्जन स्थान में पूजन करता है, उसे स्वयं देवी पत्र-पुष्प-फल-जल आदि प्रदान करती हैं।

पुष्पाभाव के सम्बन्ध में भविष्य पुराण की यह उक्ति है—

पुष्पों के न मिलने पर पत्र ही अर्पित करे। पत्रों के भी न मिलने पर तृण, गुल्म, औषधि से भी पूजन कर सकता है। औषधियों का भी अभाव होने पर केवल भक्ति से पूजन होता है। जो पुण्य एक पुष्प के निवेदन से मिलता है, वह दश सुवर्ण-पुष्पों के प्रदान के फल के बराबर है।

पिच्छिला तन्त्र में भी उक्त विधान का अनुमोदन मिलता है। यथा—

गन्ध, पुष्प, पत्र, अक्षत, जल किसी के भी सुलभ न होने पर मानसोपचार से ही काम ले किन्तु पूजन में विराम कभी न हो।

यहाँ यह स्मरणीय है कि उपचारों के अभाव में प्रतिनिधि-उपचार ग्रहण करने का जो नियम निर्दिष्ट है, वह गन्धादि पाँच मुख्य उपचारों पर लागू नहीं होता। योगिनी तन्त्र में लिखा भी है—

गन्धादि - पञ्चकाभावे पूजा व्यर्थैव सर्वदा।

अर्थात् गन्धादि पञ्चोपचारों के बिना पूजा सर्वदा व्यर्थ ही होती है।

(२) उपचार-विवरण

देवता के पूजा के उपचारों के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। यहाँ हमने यथा-साध्य प्रामाणिक ही विवरण दिया है। ये पूजोपचार बड़े महत्व के हैं। इनका उपयोग जितना अधिक सावधानी से किया जायगा, उतनी सरलता से साधक को पूजा की सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ प्रमुख उपचारों में से प्रत्येक पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

१ आवाहन—देवता के पहले से ही प्रतिष्ठित होने के कारण 'आवाहन' नामक उपचार नहीं किया जाता है, किन्तु उसके स्थान में देवता का केवल ध्यान भर किया जाता है।

२ आसन—कुलार्णव के सत्राहवें उल्लास में आसन के सम्बन्ध में लिखा है—

हे प्रिये, आत्म-सिद्धि के प्रदान से, समस्त रोगों के निवारण से और नवों सिद्धियाँ देने से 'आसन' कहा जाता है।

योगिनी तन्त्र में आसन इस प्रकार बताये गये हैं–जप-क्रिया में सछिद्र, जला हुआ, पुराना, फटा हुआ, और दूसरे का आसन न ग्रहण करना चाहिये।

मृग-चर्म, व्याघ्र-चर्म, कुश, बेत, रुई, रेशम, ऊन के आसन हों, जो सछिद्र न हों और फटे हुये न हों। व्यास ने आसनों के सम्बन्ध में लिखा है कि—रेशम, कम्बल, चर्म, लकड़ी अथवा ताल-पत्र का आसन बनावे।

इसी सम्बन्ध में श्रीकालिका पुराण में लिखा है—पुष्प, काष्ठ, वस्त्र, चर्म और रेशम इनमें से किसी का आसन अर्पित करे।

आसन कितना बड़ा होना चाहिये, इस सम्बन्ध में कालिका पुराण में लिखा है कि—

काष्ठासन चौबीस अंगुल लम्बा और सोलह अंगुल चौड़ा होना चाहिये। वह चार या पाँच अंगुल से अधिक ऊँचा न हो। वस्त्रासन दो हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा होना चाहिये। यह आसन तीन अंगुल मोटा होना चाहिये।

व्यास ने आसनों की महिमा इस प्रकार लिखी है कि—

'काले मृग-चर्म से ज्ञान-सिद्धि; व्याघ्र-चर्म से मोक्ष और लक्ष्मी-प्राप्ति, वंशाजिन से रोग-मुक्ति और कम्बल से दुःख-मुक्ति होती है। अभिचार में नीले रङ्ग का, वश्य-कर्मों में लाल रङ्ग का, शान्ति-कर्म में कम्बल का और सब कामों में चित्रित कम्बल के आसन का उपयोग करना चाहिये। बाँस के आसन से दारिद्रय की, पत्थर के आसन से रोग की, भूमि के आसन से दुःख की, सछिद्र काष्ठ के आसन से दरिद्रता की, तृण के आसन से दरिद्रता और धन-यश-हानि की और पत्ते के आसन से चित्त-भ्रम की उत्पत्ति होती है।'

३ पाद्य—पाद्य-जल में डाली जानेवाली वस्तुएँ कुलार्णव तन्त्र के सत्रहवें उल्लास में ये बताई गई हैं—श्यामाक, दूर्वा, कमल और विष्णुक्रान्ता।

४ अर्घ्य—शारदातिलक में अर्घ्य-जल में डाली जानेवाली ये आठ वस्तुएँ बताई हैं–श्वेत सरसों, अक्षत, दूर्वा, तिल, जौ, गन्ध, फल और पुष्प।

शिव-पुराण में अर्घ्य-दान की यह विधि लिखी है कि सोने के पात्र में सुगन्ध जल भरे। उसमें लाल पुष्प, तिल, कुश-भाग, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग की जड़ और गव्य छोड़े। फिर घुटनों के बल होकर देवता के सामने नत-मस्तक हो उस पात्र को अपने मस्तक से लगाकर देवता को अर्घ्य-जल अर्पित करे।

५ आचमनीय—कुलार्णव के सत्रहवें उल्लास में आचमनीय पात्र में डाली जानेवाली वस्तुएँ बताई हैं—जातीपत्र, लवङ्ग और कङ्कोल। अगस्त्य संहिता में कपूर, अगरु और पुष्प भी निर्दिष्ट हैं।

६ स्नान—कुलार्णव के उसी उल्लास में 'स्नान' शब्द का अर्थ बतलाया है कि–पाशों के छेदन से, नव तत्त्वों के धारण करने से और पवित्र करने से स्नान कहा जाता है।

श्री योगिनी तन्त्र के सातवें पटल में लिखा है—तैल से उद्वर्तन करे और क्वाथ से सुखावे। पक्ष के अन्त में और मास के अन्त में यह क्रिया करके महा-स्नान करावे।

मङ्गल-स्नान के विषय में एक अन्य ग्रन्थ में लिखा है कि—सर्वौषधियाँ, काले तिल, गन्ध, आदि के चूर्ण के साथ सुगन्धित चम्पकादि तैल से अङ्गों का उद्वर्तन करे। तब मङ्गल स्नान करावे।

उद्वर्तन में प्रयुक्त होनेवाली वस्तुओं में रजनी, सहदेवी, शिरीष, लक्ष्मणा, सहभद्रा और कुश के अग्रभाग की गणना की गई है।

योगिनी तन्त्र में लिखा है कि– एक पल या आधा पल या चौथाई पल सुगन्धित तिल के तेल से अथवा हल्दी या चावल के चूर्ण से उद्वर्तन करे।

तैल-स्नान के सम्बन्ध में निषिद्ध दिनों का उल्लेख योगिनी तन्त्र के नवें पटल में इस प्रकार किया गया है—अयन में, विषुव में, मङ्गल को, दिन के क्षय में, द्वादशी में और ग्रहण में तैल-स्नान न करावे।

इसी प्रकार वहीं उद्वर्तन के प्रसङ्ग में लिखा है—तीन दिन के अन्तर या दो दिन के अन्तर में करना चाहिये। देवी के स्नान कराने के लिये सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टी के कलश का उपयोग करना चाहिये।

योगिनी तन्त्र में स्नान-जल में डाली जानेवाली वस्तुएँ ये बताई गई हैं—द्रोण-पत्र, बिल्व-पत्र, करवीर और कमल के फूलों का स्नान-काल में उपयोग करे।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में लिखा है कि—स्नान-पात्र में अक्षत, गन्ध और पुष्प डाले। इनका स्मरण करते हुये धोए हुये अक्षत छोड़े।

सब वस्तुओं के स्नान में जल का प्रयोग करे परन्तु पञ्चामृत और सुगन्ध तैल के स्नान में जल का प्रयोग न करे।

स्नान कराने में जिन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये, उनका उल्लेख योगिनी तन्त्र और महानिर्वाण तन्त्र में किया गया है। योगिनी तन्त्र के सातवें पटल में लिखा है—वैदिक मन्त्र से अथवा माया-वीज से स्नान करावे।

महानिर्वाण तन्त्र के तेरहवें उल्लास में लिखा है—व्याहृतियों के सहित प्रणव-युक्त मूल गायत्री का उच्चारण कर द्रव्यों का उल्लेख करते हुये वाक्यान्त में 'तोयेन स्नापयामि नमः' कहकर स्नान करावे।

स्नान का कलश देवता के दक्षिण भाग में स्थापित करे। इसकी विधि योगिनी तन्त्र के नवें पटल में इस प्रकार दी है कि 'कलश में जल भर कर उसमें सविधि तीर्थों का आवाहन करे। उसमें गन्ध

और पुष्प छोड़कर मूलमन्त्र का जप करे। फिर उसका अमृतीकरण कर धेनु-मुद्रा दिखावे। उसमें षडङ्गों का न्यास करे। फिर उसका अवगुण्ठन करके पूजन करे। तब इसी संस्कृत जल से, स्नान द्रव्य छोड़कर, देवता को स्नान करावे।' वहीं लिखा है कि देवी को पहले आचमन कराकर तब स्नान करावे।

मधुपर्क-स्नान के सम्बन्ध में कुलार्णव में लिखा है कि मधु, घी और दही का मिश्रण करने से मधुपर्क बनता है।

त्रिजल-स्नान के प्रसङ्ग में योगिनी तन्त्र में लिखा है—तीर्थ-जल, सुगन्ध जल और कर्पूर-मिश्रित जल से क्रम-पूर्वक स्नान करावे।

देवता का स्नान कराने के बाद शेष जल को अपने शरीर पर छिड़के।

७ वस्त्र——वस्त्र के सम्बन्ध में लिखा है——लाल वस्त्र शक्ति, सूर्य और गणेश को प्रदान करे। शङ्कर को श्वेत वस्त्र प्रिय है। मल-हीन और अछिद्र वस्त्र देवता को प्रदान करना चाहिये। रेशमी और सूती वस्त्र ही विहित हैं।

वर्जित वस्त्र बताते हुये लिखा है—तैल-सिक्त वस्त्र से रोग, सछिद्र से निन्दा, पुराने वस्त्र से दरिद्रता और मलिन वस्त्र से तेज-हीनता होती है। इस प्रकार के वस्त्र देवता को न अर्पित करे।

देवता का अङ्ग पोंछने के लिये चन्दन लगे हुये सूती वस्त्र का उपयोग करना चाहिये। इस सम्बन्ध में लिखा है—लाल वस्त्र का प्रयोग करने से कोढ़ी और पाण्डु-रोगी होता है। रेशमी वस्त्र से क्षोभ होता है और नीले तथा रक्त रङ्ग के वस्त्र से नाश होता है।

८ गन्ध—इस सम्बन्ध में कुलार्णव में लिखा है—गम्भीर पाप, दुर्भाग्य और क्लेश के नाश से तथा धर्म-ज्ञान के प्रदान से 'गन्ध' कहा जाता है।

गन्ध-द्रव्य के सम्बन्ध में लिखा है—सभी गन्धों में श्वेत चन्दन श्रेष्ठ है। इससे प्रयत्नपूर्वक उसे ही सदा काम में लाना चाहिये।

और भी लिखा है—कर्पूर, श्वेत चन्दन, कस्तूरी और केसर बराबर-बराबर लेने से 'सर्व-गन्ध' बनती है, जो सभी देवताओं को प्रिय है।

सभी देवताओं के लिये यह 'अष्ट-गन्ध' कहा गया है—गोरोचन, श्वेत चन्दन, देवदारु, कपूर, काला अगर, सोंठ, कस्तूरी और केसर।

देवी का अष्ट-गन्ध आद्या की एक पुरानी पद्धति में यह लिखा है---केसर, काला अगर, कस्तूरी, कपूर, हस्ति-मद, श्वेत चन्दन, गोरोचन और लाल चन्दन से युक्त गन्ध द्वारा उत्तम यन्त्र लिखे।

महानिर्वाण तन्त्र में गन्धार्पण करने की विधि यह लिखी है---मध्यमा और अनामिका के योग से देवता के हृदय में गन्ध अर्पित करे। गन्ध अर्पित करने के मन्त्र के अन्त में 'नमः' की योजना करे और पुष्प के सम्बन्ध में 'वौषट्' की।

९ अक्षत—कुलार्णव में लिखा है—आत्म-ज्ञान प्रदान करने, सारे पापों के दूर करने और तादात्म्य करने से 'अक्षत' कहलाते हैं।

योगिनी तन्त्र में लिखा है—अखण्डित चावल विहित हैं। सात, आठ या नौ की संख्या में दूर्वा के साथ भगवती को अर्पित करे।

और भी लिखा है कि—त्रिपुरा की पूजा श्वेत अक्षतों से न करे। उन्हें कुंकुम या रक्त चन्दन से रंग कर अर्पित करे।

विल्व-पत्र—इस सम्बन्ध में लिखा है कि सूर्य को छोड़कर अन्य सभी देवताओं को विल्व-पत्र अर्पित करना चाहिये। विल्व-पत्र पुष्प का सहकारी है और शङ्कर को अधिक प्रियकर है। कहीं-कहीं गणेश के सम्बन्ध में भी इसका निषेध किया है, यथा—छः महीने के बाद विल्व-पत्र बासी हो जाता है। गणेश और सूर्य को छोड़कर सब देवताओं के पूजन में इसका प्रयोग किया जाता है।

और भी लिखा है—पत्र या फूल या फल जैसे उत्पन्न होते हैं, वैसे ही देवता को अर्पित करे किन्तु विल्व-पत्र अधोमुख अर्पित करे।

१० पुष्प—कुलार्णव में लिखा है—पुण्य के सम्वर्धन से, पाप के समूहों के नाश से और बहुत अधिक धन प्रदान करने से 'पुष्प' कहा जाता है।

वर्जित पुष्प के सम्बन्ध में लिखा है कि बासी फूल और बासी जल से देवता का पूजन न करना चाहिये। देवताओं के पूजन में इन फूलों का व्यवहार न करना चाहिये—

बन्धूक, कुन्द, अतिमुक्त, केतकी, कपित्थ, बकुल, शिरीष और निम्ब।

इसके सिवा भविष्य पुराण में लिखा है—कीड़े-मकोड़ों से खाये गये, कटे-फटे, बासी, चोट खाये हुये और अपने आप झड़े हुये फूलों को छोड़ दे, काम में न लावे। मुकुलित और अधखिले फूलों को देवता के प्रति निवेदित न करे। शूद्र द्वारा लाये गये और खरीदे हुये फूलों से पूजन करने से पतन होता है। देवता पर चढ़े हुये, बाएँ हाथ से गृहीत, अधोभाग के वस्त्र में रखे हुये और जल से धोये हुये फूल देवता ग्रहण नहीं करते।

और भी लिखा है—अँगूठे से फूल न चढ़ावे और न अधोमुख फूलों से पूजन करे। कुश के अग्रभाग से जल न छिड़के। सूखे और पृथ्वी पर गिरे हुए फूलों से देवता की पूजा न करे। जिनकी पंखुड़ियाँ टूटी हुई हैं और जो खिले नहीं हैं—ऐसे फूलों से पूजन न करे।

यह भी लिखा है—स्नान करके द्विज लोग जो पुष्प चुनते हैं, उन्हें न पितर और न देवता ग्रहण करते हैं। ऐसे पुष्पों से पूजा न करे। वस्त्र, हाथ या रेंड़ के पत्ते में लाये हुये तथा स्वयं झड़े हुये फूलों से पूजा करना निष्फल होता है।

पत्र-पुष्प के बासी होने के सम्बन्ध में लिखा है कि—कमल पाँच रात्रियों तक, विल्व-पत्र दस रात्रियों तक और तुलसी-पत्र ग्यारह दिनों तक बासी नहीं होते।

सर्वश्रेष्ठ पुष्प नील कमल माना गया है, जैसा कि योगिनी तन्त्र में लिखा है—

'सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरं नीलमुत्पलं' अर्थात् समस्त पुष्पों में नील कमल श्रेष्ठ है।

देवी पुराण में पञ्च पुष्प ये बताये हैं—१ चम्पक, २ आम्र, ३ शमी, ४ पद्म और ५ करवीर।

कमल की माला से पूजन करने के सम्बन्ध में योगिनी तन्त्र में लिखा है कि भक्ति-पूर्वक चण्डिका का पूजन कमल की माला से करने से ज्योतिष्टोम का फल प्राप्त होकर मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है।

पत्र-पुष्प के अभाव में क्या करे, इस विषय में भविष्य पुराण में यह लिखा है—सुन्दर पुष्पों के अभाव में पत्र ही देवता को अर्पित करे। पत्र भी न सुलभ हों तो तृण, गुल्म, औषधियों से पूजन करे। ये भी न हों तो भक्ति मात्र से पूजा हो जाती है।

११ धूप--कुलार्णव में लिखा है कि–पवित्र गन्ध के प्रभाव से महान् दोष को दूर करने से 'धूप' कहा जाता है।

मन्त्र-तन्त्र-प्रकाश में वर्जित धूप के सम्बन्ध में लिखा है कि---कपास, अस्थि और केशों से दूषित धूप को न जलावे।

धूप के सम्बन्ध में श्री शङ्कराचार्य महाराज ने अपने मानस-पूजा स्तोत्र में उल्लेख किया है कि—जटामासो, गुग्गुल, श्वेत-चन्दन, काला अगर, कपूर, शिलाजोत, शहद, केशर आदि वस्तुओं को कूट-पीस कर गो-घृत में सानकर धूप बनावे और इसी का देव-पूजन में उपयोग करे।

ज्ञानार्णव तन्त्र में लिखा है---कस्तूरी, केशर, गुग्गुल, शाल का गोंद, सफेद चन्दन, काला अगर, कपूर, चोनो, घी और शहद---इनके मिश्रण से तैयार धूप देवता के प्रति अर्पित करे।

धूप के निवेदन करने की प्रक्रिया इस प्रकार है कि पहले धूप और दीप के पात्रों को अपने सामने स्थापित करे और उनका यथा-विधि जल से प्रोक्षण करे। फिर यथोक्त मन्त्र से उन्हें देवता को निवेदित करे। 'जय-ध्वनि मन्त्र-मातः स्वाहा' इस मन्त्र से घण्टे का पूजन कर और बायें हाथ में उसे लेकर बजाते हुये दाहिने हाथ में धूप-पात्र लेकर देवता की नासिका के अधोभाग में धूप प्रदान करे। दीप को देवता की दृष्टि के भीतर दस बार घुमाकर निवेदित करे।

शारदातिलक में लिखा है कि धूप-पात्र को मध्यमा और अनामिका अँगुलियों के बीच में ग्रहण करे। फिर उस पर अँगूठे का अग्रभाग रखकर घण्टा बजाते हुये धूप प्रदान करे।

१२ दीप---कुलार्णव में लिखा है---दिव्य रूप प्रदान करने से और पर-तत्व को प्रकट करने से मोक्ष-मार्ग का साधक 'दीप' कहलाता है।

दीप के सम्बन्ध में लिखा है कि दीप की बत्तियों में यदि घी इतना अल्प हो कि वह दिखाई तक न दे, तो ऐसी वर्तिका जलानेवाला पतन को प्राप्त होता है।

और भी लिखा है कि---दीप नेत्रों को सुख देनेवाला, ज्योतियुक्त, दूर से कष्टों को दूर करनेवाला, अच्छी शिखावाला, शब्द-हीन, धूम्र-रहित हो और बहुत छोटा न हो।

दीपक को भूमि पर कभी न रखना चाहिये। कोशज पदार्थ की, ऊन की तथा वस्त्र की बत्तो न बनावे। सदा रुई की ही बत्ती बनावे। बत्ती न तो बहुत लम्बी हो और न बहुत छोटी।

१३ नैवेद्य---कुलार्णव में लिखा है---हे कुलेशानि ! छः रसों से युक्त चतुर्विध (चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय) द्रव्यों से देवता की तृप्ति होती है, इसी से इसका नाम 'नैवेद्य' है।

नैवेद्य प्रदान करने की विधि महानिर्वाण तन्त्र में यह लिखी है कि सामान्य-विधि से अपने सामने मण्डल बनावे। उसके ऊपर नैवेद्य की वस्तुओं से पूर्ण पात्र स्थापित करे। फिर नैवेद्य-द्रव्यों का यथा-विधि प्रोक्षण और अवगुण्ठन करे। फिर उनका रक्षण कर उनका अमृती-करण करे। तब उनको अपने मूल-मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे। फिर अर्घ्य के जल से नैवेद्य को देवता के प्रति निवेदित करे। प्राणादि पाँचों मुद्राओं से देवता को प्राशन करावे। बाँईं ओर प्रफुल्लित कमल की भांति नैवेद्य-मुद्रा दिखाकर देवता के पानार्थ मूल-मन्त्र द्वारा तीर्थ प्रदान करे। तदनन्तर आचमनीय प्रदान करे। अन्त में श्रीपात्र के अमृत से तीन बार तर्पण करावे।

१४ ताम्बूल—देवता को 'ताम्बूल' इस मन्त्र से प्रदान करे—

एला-लवंगादि-समन्वितानि कंकोल-कपूर-सुमिश्रितानि ।
ताम्बूल-वल्ली-दल-संयुक्तानि पूगानि ते देवि ! समर्पयामि ॥

१५ प्रदक्षिणा---देवता के दाहिनी ओर से ईशान पर्यन्त घूम आना प्रदक्षिणा है । नियम यह है कि—देवी की एक, सूर्य की सात, गणेश की तीन, विष्णु की चार और शिव की आधी प्रदक्षिणा करे ।

जिस प्रकार चरणों का स्पर्श प्राप्त कर जल 'चरणामृत' और निवेदित मिष्ठान्नादि नैवेद्य 'प्रसाद' बन जाता है और उस 'चरणामृत' तथा 'प्रसाद' के ग्रहण करने से पवित्रता आती है, उसी प्रकार देवता की दाहिनी दिशा से की गयी परिक्रमा से सत्वगुण की वृद्धि होती है ।

दैवी शक्ति और उसका तेजोवलय (ज्योतिर्मण्डल) दक्षिणवर्ती होते हैं अर्थात् उस मण्डल की दिव्य प्रभा दक्षिण दिशा की ओर से ही गतिमान् होती है । इसी कारण दिव्य लहरियों का दक्षिण की ओर गतिमान् होना स्वाभाविक है । जिस स्थान पर भलीभाँति देवता की प्रतिष्ठा करके देव-प्रतिमा अवस्थित की जाती है, उस स्थान के मध्य-विन्दु से अर्थात् देव प्रतिमा से कुछ दूर तक उस देवता की दिव्य प्रभा बिखरी रहती है, जो निकट में कुछ गहरी और आगे क्रमशः कम तथा विरल होती जाती है । उस देव-प्रतिमा के चारों ओर घूमने या इस तेजोमण्डल में से निकलने पर उस प्रभा से परिक्रमा करने-वाले व्यक्ति का तन-मन पवित्र हो उठता है, यह अनुभव की बात है ।

देवता का तेज दक्षिणावर्ती होने से उसकी प्रदक्षिणा भी उसी के अनुरूप गति की दिशा में करना शास्त्र-सम्मत है । दक्षिणावर्ती या दाहिने हाथ की ओर घूमना यही 'प्रदक्षिणा' शब्द का अर्थ है ।

महादेव जी की ज्योति-लहरों की गति केवल दाहिनी ओर नहीं है । अरघे (जलहरी) के निचले भाग के कोने तक जाकर यह पुनः वापिस लौटती है । इसी कारण उनकी परिक्रमा विशिष्ट प्रकार से दोनों ओर करने का विधान है ।

यहाँ षोडशोपचारों में पन्द्रह उपचारों का परिचय दिया गया है । शेष एक उपचार यज्ञोपवीत, जो आठवाँ उपचार है, उसका परिचय नहीं दिया गया है क्योंकि वह सभी को विदित है ।

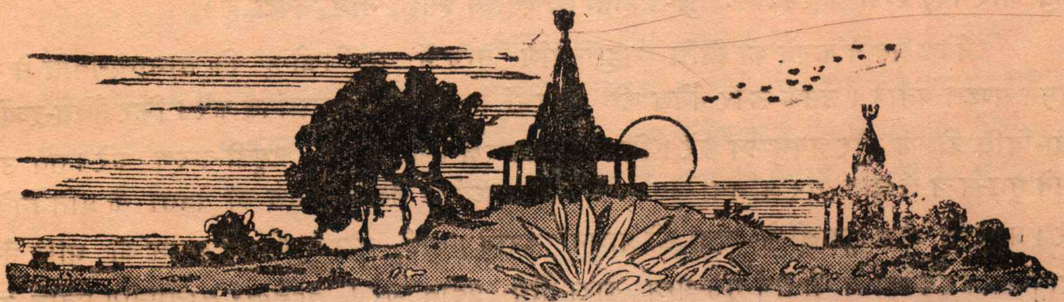

(३) उपचार-रहस्य

शाक्त-दर्शन के अर्न्तगत 'पूजा' तीन प्रकार की बताई गई है—(१) परा-पूजा, (२) पराऽपरा-पूजा, (३) अपरा-पूजा।

'परा-पूजा' का उपासक अपने प्रत्येक कर्म द्वारा चिदचिन्मयी की पूजा करता है। वह जो बोलता है, वही जप है। उसकी अंगुलियों की क्रियायें मुद्रायें होती हैं। उसका चलना ही प्रदक्षिणा है, भोजन ही हवन है। ऐसे साधक 'दिव्य' या 'कौल' कहलाते हैं।

'पराऽपरा-पूजा' में उक्त पूर्ण अद्वैत-भाव नहीं रहता है, परन्तु अभ्यास से क्रमशः अद्वैत-भावना की प्राप्त होती है। यही 'वीर-पूजा' है। इसमें अन्तर्यजन (सूक्ष्म-भाव) और बहिर्यजन (स्थूल-भाव) मिला हुआ है। इसीलिये इसे भोग और मोक्ष दोनों की देनेवाली कहा गया है।

'अपरा-पूजा' प्रारम्भिक श्रेणी के साधक के लिये निर्दिष्ट है। इसमें द्वैत-भाव की प्रधानता रहती है।

जिस प्रकार 'पूजा' के तीन भेद हैं, उसी प्रकार 'पूजा' के तीन अंग भी हैं– (१) मन्त्र, (२) रूप (ध्यान), (३) क्रिया या पूजा। 'पूजा' के पूर्ण ज्ञान के लिये इन अंगों का ज्ञान आवश्यक है। अतः गुरु-द्वारा मन्त्र, रूप (ध्यान) और क्रिया (उपचार) का रहस्य अवश्य जानना चाहिये।

पूजा के उपचारों का विवरण पहले दिया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि मुख्य उपचारों का रहस्यार्थ दिया जाता है---

१ आवाहन

'आवाहन' से एक विशिष्ट स्थान में सर्व-व्यापक तत्व की धारणा होती है। दूसरे शब्दों में हृदय से इष्ट-देव का आवाहन कर उन्हें यन्त्र आदि में प्रतिष्ठित किया जाता है।

२ आसन

'आसन' से तात्पर्य अपरिच्छिन्न भाव से देवता को प्रतिष्ठित करना है। इसीलिये हृदय-कमल का आसन सर्व-श्रेष्ठ कहा गया है।

३ पाद्य

'पाद्य' से आशय आकाशादि पञ्च-तत्वों से बने प्रपञ्च को सच्चिदानन्द से एकात्म भावना-रूपी जल से पैरों का धोना है। सूक्ष्म-रूप में सहस्रार से टपकते हुये अमृत-रूपी 'पाद्य' की भावना करे।

४ अर्घ्य

यह भी 'पाद्य' के समान उसी भाव से शिरादि शरीर आदि का धोना है। सूक्ष्म रूप में मन का अर्घ्य देना चाहिये।

५ आचमन

जल ब्रह्म है। इस भाव से जल से आत्म-एकीकरण की भावना ही आचमन है। सहस्रार से टपकते हुये अमृत का 'आचमन' करावे।

६ स्नान

'स्नान' से तात्पर्य सहस्रार से टपकते अमृत से स्नान कराना —सत्-चित्-आनन्द-मय बनाना है।

७ वस्त्र

'वस्त्र' वृत्ति-विशेष का द्योतक है। अतः समस्त वृत्ति-विषयक भावना के समर्पण का बोध है।

८ गन्ध

'गन्ध' पृथ्वी का विशेष गुण है। गन्ध से तात्पर्य है कि अपने पार्थिव अंश को चिदंश समझकर अपने को शुद्ध चित्-रूप समझना।

९ पुष्प

'पुष्प' आकाश का द्योतक है। उक्त पार्थिव अंश की तरह आकाश-अंश की भावना है। अमाय, अनहंकार, अराग, अमद, अमोह, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, अलोभ—ये दश पुष्प चढ़ाये जाते हैं।

१० धूप

'धूप' वायु-अंश का प्रतीक है। उक्त पार्थिव और आकाश अंश की तरह वायु अंश की भावना द्वारा समस्त विषयानुभावों का समर्पण होता है।

११ दीप

'दीप' तैजस-अंश का प्रतीक है। इसके द्वारा साधक अपने अज्ञान रूपी अंधेरे का नाश करता है।

१२ नैवेद्य

अमृतांश की भावना—'नैवेद्य' है। अतः तादात्म्य-भाव से भोग्य-पदार्थ निवेदित करना चाहिये।

नैवेद्य-पदार्थ की शुद्धि के लिये १ निरीक्षण, २ प्रोक्षण, ३ अवगुण्ठन, ४ दोष-निरसन की जो क्रियायें की जाती हैं, उनसे साधक के अन्तःकरण की शुद्धि होकर तादात्म्य-भाव की प्राप्ति होती है।

१३ ताम्बूल

चन्द्र की सोलह कलाओं की भावना का द्योतक 'ताम्बूल' है। इसके द्वारा पूर्ण अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

१४ स्तव (प्रार्थना)

परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी आदि शब्दों के नाद द्वारा ब्रह्म में आत्म लय करना।

१५ प्रदक्षिणा

भोग में लिप्त चित्त-वृत्ति की विषय-गामी वृत्तियों को ब्रह्म के तेजः स्वरूप में लय करना।

१६ विसर्जन

पूजा के समाप्त होने पर 'विसर्जन' की क्रिया द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस ज्ञान से पूर्ण सन्तोष मिलता है। इसी से पूर्ण सन्तोष ही 'विसर्जन' है। हृदय में देवता का 'विसर्जन' किया जाता है, जिसका भाव यह होता है कि अब कोई कर्म शेष नहीं है।

स्थूल उपचारों का महत्व

'उपचारों के रहस्य' के अन्तर्गत दार्शनिक चिन्तन के आधार पर उपचारों की व्याख्या की गई है किन्तु इससे यह समझना उचित न होगा कि स्थूल उपचारों का महत्व गौण है। इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि प्रत्येक उपचार का अपना वैज्ञानिक भौतिक प्रभाव है और उसके विधिवत् प्रयोग से साधक को तदनुरूप ही अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है। उदाहरण के लिये 'पुष्प' उपचार के सम्बन्ध में आयुर्वेद शास्त्र की उक्ति है कि---

पुष्पस्य धारणं कान्ति-वर्द्धनं काम-कारकं, श्री-ओजः-वर्द्धकं चैव पाप-ग्रह-विनाशनम्।

अर्थात् फूलों को धारण करने से कान्ति, काम, ओज और श्री की वृद्धि होकर पाप-दोष की शान्ति होती है। साथ ही यह भी कहा है कि—

पुष्प-द्रवः सरः शीतस्तु वरः श्रम-दाहहा, वान्ति-तृट्-पित्त-रोगघ्नो मुख-रोग-विनाशनः।

अर्थात् फूलों के रस से सर्दी-गर्मी, परिश्रम, शरीर की जलन, वमन, प्यास, पित्त-जनित रोग और मुख की व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

देव-पूजा के लिये निर्दिष्ट विविध फूलों के गुणों को जानने से उक्त कथनों की पुष्टि होती है।

जाती-पुष्प—तीखा, हलका, गर्म, कड़वा, चरपरा, वमन करनेवाला होने से मुख को शुद्ध करता है। इससे कफ, वात, मुख-रोग, दन्त-रोग, मस्तक-रोग, नेत्र-रोग, विष, कुष्ठ, रक्त-दोष, क्रमि-रोगादि दूर होते हैं। इसकी कलियों से व्रण-विस्फोट, नेत्र-रोग और कुष्ठ-रोग अच्छे होते हैं। यह फूल सुगन्धित, मनोहर और कफ-पित्त का नाशक है।

चमेली—तिक्त है। यह व्रण, कुष्ठ, विष, रक्त-विकार, शिरो रोग, नेत्र-मुख-रोग और छालों के विकार को दूर करती है।

बेला—शीतल, हलका और तिक्त है। यह त्रिदोष-नाशक है; कान, आँख और मुख के रोगों को दूर करता है।

यूथिका (जुही)—स्वादिष्ट, शीतल है। यह शर्करा-रोग अर्थात् रक्त या मूत्र में चीनी के आधिक्य से होनेवाले रोग और पित्त, दाह, तृषा तथा अनेक प्रकार के छालों के विकार दूर करता है।

मालती—कफ, पित्त, छालों के दोष को दूर करती है। कुष्ट-नाशक और वमन-कारक है। शोथ व कानों के रोग को शान्त करती है।

शत-पत्री (श्वेत गुलाब)—शीतल, तिक्त, कषाय है। यह कुष्ट-नाशक और मुख के दागों को दूर करता है। पित्त और दाह को शान्त करता है।

रक्त-कुब्जक (लाल गुलाब)—रक्त-विकार, बिच्छू-विष और त्रिदोष को शान्त करता है।

जपा पुष्प—बालकों को हितकारी, दाह, प्रमेह, अर्श, धातु-रोग, प्रदर आदि रोगों को दूर करता है।

तुलसी—कुष्ट, मूत्र-कृच्छ्र, रक्त-विकार, कफ-वात-नाशक है।

कमल—कफ, पित्त, दाह, रक्त-दोष, विष और विसर्प रोगों को शान्त करता है।

इसी प्रकार विभिन्न 'फलों' के भी गुण ज्ञातव्य हैं—

अनार—त्रिदोष-नाशक, दाह, ज्वर, मुख-रोग को दूर करनेवाला है और तृप्ति-दायक है। यह मल-रोधक और मेधा तथा बल को बढ़ाता है।

केला—वीर्य-वर्द्धक, रक्त-पित्त-नाशक और रुचि-कारक है।

नारिकेल—पुष्टि-कारक, वस्ति-शोधक और पित्त-नाशक है।

'गन्ध' में 'चन्दन' का प्रयोग होता है। यह 'चन्दन' शीतल होने के साथ ही वीर्य-वर्द्धक और कान्ति-दायक है। यह ज्वर मुख-रोग दाह और रक्त-विकार आदि दोषों को शान्त करता है।

'सिन्दूर'--- गर्म होता है। यह कुष्ठ, कण्डू (खुजली), विष, व्रणादि को शान्त करता है।

इसो प्रकार अन्य उपचारों के भी पदार्थ कोई-न-कोई भौतिक गुण रखते हैं और उनके प्रभाव से साधक को अपनी साधना में सहायता मिलती है।

अकारादि-क्रम से मुद्रा-सूची

अंकुश ५, १०
अंग-न्यास ५
अधोमुखी ५
अपान ७
अपानाहुति ७
अभय १०
अमृतीकरण ७
अर्घ्य १३
अवगुण्ठिनी ६, १६
अश्विनी १४
अशनि १५
अस्त्र ९, ११
आंजलिक ५
आंभसी (जल) १४
आकाश (नभ) १४
आचमन ७
आवशिष्टिका १६
आवाहनी ६
आहुति १६
उड्डीयान १३
उदान ७
उदानाहुति ७
उन्मादिनी १२
कपाल १०
कमल ५
कर-न्यास ५
काकी १४
काम ९
कुन्त ५
कुम्भ ५
कुशलि १५
कूर्म ५, ९
कौस्तुभ ८
क्रोध १५
खट्वाङ्ग १०
खड्ग १०
खेचरी १२
गदा ८
गन्ध ७
गरुड़ ९
गालिनी १५
ग्रथित ५
ग्रास ७
घण्टा ८
चक्र ८
चतुर्मुखी ५
चर्म १०
छेटिका १५
जगन्मोहन ९
जप ५
जालन्धर १३
जीव-न्यास ६
ज्ञान ५, ८
डमरु १०
तत्त्व ५
तर्जनी १५
ताम्बूल ७
त्रिखण्डा ६
त्रि-मुखी ५
त्रिशूल ९
दन्त १०
दीप ७
दुर्ग १०
द्वि-मुखी ५
धनुष, धनुः ९
धूप ७
धूमिनी ११
धेनु ५, ७
नाद ६
नारसिंही, नृसिंह ९
निर्वाण ५
निष्ठुर १३
नैवेद्य ७
पंकज ५, १३
पंकजा ११
पञ्च-बलि १५
पञ्च-मुखी ५, १५
पद्म ८, १०
परशु ९, १०
परमीकरण ७
पाश १०
पाशिनी १४
पुष्प ७
पुस्तक ११
प्रज्वालिनी १६
प्रलय ५
प्राण ७
प्राणाहुति ७
प्रार्थना ४, १२,१५
पृथ्वी १४
बीज ६, ११
बीजपूर १०
भुजङ्गिनी १४
भूतिनी ११
मत्स्य ५, ९
महांकुशा १२
महाक्रान्त ५
महा-खग १३
महा-मुद्रा १३
महा-योनि ११
महा-वेध १३
माण्डूकी १४
मातङ्गिनी १४
मातृका-न्यास ६

मुकुल १३
मुद्गर ५
मुण्ड ११
मुशल १०
मुष्टिक ५
मुष्टी १५
मूल-बन्ध १३
मोदक १०
मृग १०
मृगी १६
यम-पाश ५
योग १३
योनि ५, ९
रिपु-जिह्वा-ग्रहा १४
लिङ्ग ९
लेलिहा ६, ११
वंशी ८
वज्रोली १४
वनमाला ८
वर ९
वराह ५, ९
वाण ९
वायु १४
वासुदेव ५
विघ्न १०
विघ्नघ्नी १२
वितत ५
विन्दु ६
विपरीतकरणी १३
विल्व ८
विस्तृत ५
विस्मय १२
वीणा ११
वैराग्य ५
वैश्वानरी १४
व्याक्रोशी १३
व्याख्यान ११
व्यान ७
व्यानाहुति ७
व्यापक ५
शङ्ख ५, ८
शकट ५
शक्ति १५
शाम्भवी १४
शुभङ्करी १५
शूकरी १६
श्रीवत्स ८
षण्मुखी ५
संहार १५
सकलीकरण ७
सन्निधापिनी ६
सन्निरोधिनी ६
सप्त-जिह्वा १६
सम्पुटी ५
समान ७
समानाहुति ७
सम्मुखी ५
सम्मुखीकरणी ६
सम्मुखोन्मुख ५
सर्व-वश्यकरी १२
सर्व विद्राविणी १२
सर्व-संक्षोभकारिणी १५
सर्व-संक्षोभिणी १२
सर्वाकर्षिणी १२
सिंहाक्रान्त ५
सुरभि ५
सूर्य-प्रदर्शिनी १३
सौभाग्य-दण्डिनी ६
स्थापिनी ६
स्फोट १५
हंसी १६
हयग्रीव ९

अवशिष्ट मुद्रायें

जैसा कि 'अकारादि-क्रम से मुद्रा-सूची' से स्पष्ट है, प्रस्तुत संग्रह में १७६ मुद्राओं का परिचय दिया गया है। इन मुद्राओं को पहले-पहल संवत् १९९९ की 'चण्डी' में चौमूँ (जयपुर) के स्व० पण्डित हनूमान शर्मा ने प्रकाशित कराया था। बाद में उन्हें 'मुद्रायें एवं उपचार' नामक पुस्तिका में सम्वत् २०२० में संगृहीत किया गया, जिसका दूसरा संस्करण २०३४ में प्रकाशित हुआ किन्तु यह पुस्तिका इधर बहुत समय से समाप्त थी और लोगों का आग्रह हुआ कि चित्रों सहित मुद्राओं का विवरण प्रकाशित किया जाय। अतः इस तृतीय संस्करण में ७२ प्रमुख मुद्राओं के रेखा-चित्रों के साथ उक्त मुद्रा-विवरण को पुनः प्रकाशित किया गया है।

अन्य तन्त्रों से मिलान करने पर कुछ मुद्रायें भिन्न नाम से मिलती हैं। यथा आकाश मुद्रा को 'नभ-मुद्रा', वनमाला को 'माला मुद्रा', वंशी को 'वेणु', धूमिनी को 'दैत्य-धूमिनी', जगन्मोहन को 'जगन्मोहिनी', लेलिहा को 'लेलिहान' और विघ्नघ्नी को 'काल-कर्णिका' नाम से वर्णित किया गया है। इनके सिवा निम्न तेरह मुद्राओं का और उल्लेख मिला है, जिनका वर्णन प्रस्तुत संग्रह में नहीं हुआ है—

१ पंचबलि-मुद्रायें—बलि की चार ही मुद्रायें पृष्ठ १५ पर दी गई हैं। इस सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिक 'पञ्च-बलि' की पाँच मुद्रायें निम्न प्रकार हैं—

१ वटुक : अंगुष्ठ और अनामिका से बलि-द्रव्य पर 'कारण' छोड़े
२ योगिनी : तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से बलि-द्रव्य पर 'कारण' छोड़े
३ क्षेत्रपाल : अंगुष्ठ और तर्जनी से बलि-द्रव्य पर 'कारण' छोड़े
४ गणेश (राज-राजेश्वर) : अंगुष्ठ और मध्यमा से बलि-द्रव्य पर 'कारण' छोड़े
५ सर्व-भूत : सभी अंगुलियों से बलि-द्रव्य पर 'कारण' छोड़े

२ वह्नि-प्राकार मुद्रा—दोनों हाथों के आगे त्रिशूल-मुद्रा बनाकर उन्हें परस्पर मिलावे तो यह अन्य प्रकार की 'अस्त्र' मुद्रा होती है। यह 'वह्नि-प्राकार' को लक्षित करती है।

३ दिक्-पाल मुद्रा—दोनों कलाइयों को मिलाकर कर-पल्लवों (हथेली सहित पाँचों अंगुलियों) को फैला दे। इस मुद्रा का प्रयोग दिक्पालों के अर्चन में निर्दिष्ट है।

४ शवत्युत्थापन-मुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा को उनकी पीठ की ओर से परस्पर संयुक्त करे। दोनों तर्जनियों को सीधी कर संचालित करे, तो यह मुद्रा बनती है। जप, पूजा और समाधि में इस मुद्रा द्वारा मूर्तीकरण होता है।

५ स्वागत—दोनों हाथों की अञ्जलि बनाकर उसे ऊर्ध्व-मुख करे।

६ स्नान—दायें हाथ की मूठी बाँधकर उसे अधोमुखी करे और कनिष्ठा को अलग कर दे, तो 'स्नान'-मुद्रा बनती है।

७ वस्त्र—दाईं हथेली को ऊर्ध्वमुख करे और उसकी मध्यमा को अंगुष्ठ से स्पर्श करे।

८ उपवीत—वस्त्र-मुद्रा में मध्यमा के स्थान पर कनिष्ठा को अंगुष्ठ से स्पर्श करे।

९ भूषण—वस्त्र-मुद्रा में मध्यमा के स्थान पर अनामिका को अंगुष्ठ से स्पर्श करे।

१० मधुपर्क—दायें हाथ की मूठी बाँधकर उसे अधोमुखी कर अनामा को अलग करे।

११ अक्ष-माला—दायें हाथ की मध्यमा के मध्य पोर में अंगूठे को लगाये, तर्जनी को सीधा रखे और शेष दो अंगुलियों को कुछ तिरछा फैलाये।

१२ लक्ष्मी—दोनों करतलों को आमने-सामने कर अंगुलियों के अग्रभाग को परस्पर मिलाये। फिर दोनों कनिष्ठाओं के अग्रभाग से दोनों अंगूठों को लगाकर दोनों मध्यमाओं को अलग फैला दे, तो यह सर्व-सम्पत्ति-प्रदायिनी 'लक्ष्मी-मुद्रा' बनती है।

१३ नाराच—दोनों अंगूठों से अंगुलियों को मूठी में बाँधकर दोनों तर्जनियों को दण्डवत् फैलावे। फिर बाईं तर्जनी से आकर्षण करे, तब उसकी पीठ पर दाईं तर्जनी से उसी प्रकार करे, तो 'नाराच मुद्रा' बनती है। यह 'बलि' और 'विसर्जन' क्रियाओं में प्रयुक्त होती है।

मुद्राओं का विषय अभी तक अछूता रहा है। पहली बार यहाँ विवेचन इस दृष्टि से करने का प्रयास किया गया है कि विज्ञ साधकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा और उनके अनुग्रह से अधिक शुद्धता एवं स्पष्टता के साथ इस पर प्रकाश डाला जायगा। यदि ऐसा हुआ, तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

• • •

हिन्दी कुलार्णव-तन्त्र

मूल्य १५-००

श्रीकमला कल्पतरु

मूल्य १५-००

नवरात्र-कल्पतरु

मूल्य १२-००

हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र

मूल्य २०-००

मुद्रक : परावाणी प्रेस, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६